परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2010
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3
के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी सेक्टर 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मे. अनिल आफसेट एंड पैकेजिंग प्रा. लि., दिल्ली-110007 में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

विषय सूची

आलेख

रश्मि दीवान
साक्षरता एवं अधिगम : सभी के लिए सतत् विकास 1

आर.एल. अंबेकर
नगरीय क्षेत्र के अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण 15

कविता वर्मा और पुष्पलता शर्मा
विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर लिंग, परिवेश एवं सामाजिक वर्ग का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव 23

ओउम प्रकाश पाण्डेय
भाषा का अवतरण और विकास 41

शोध टिप्पणी / संवाद

प्रमोद कुमार दुबे
21वीं सदी में वैदिक प्रज्ञान और शिक्षा की प्रासंगिकता 65

आफताब जाकिरा सिद्दीकी
प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन 91

मधु गुप्ता और वर्तिका नांरग
व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन 97

रेशमा बानो और बीरमती सिंह
माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध 109

चिंतक और चिंतन

बलविन्दर कुमार और रोथास कुमार सुथर
त्सुनेसाबुरी माकीगुची का आधे दिन प्रणाली का मूल्य बनाम बुनियादी शिक्षा 121

पुस्तक समीक्षालेख

निरंजन सहाय
शिक्षा और वर्चस्व के द्वंद्व का वितान 135

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

साक्षरता एवं अधिगम : सभी के लिए सतत् विकास

रश्मि दीवान*

प्रस्तावना

शिक्षा, साक्षरता और अधिगम विकासशील दुनिया की बड़ी चिंताओं में से एक है। जहाँ एक तरफ वैश्वीकरण ने अधिगम हेतु सभी दरवाजे खोल दिये हैं, वहीं दूसरी तरफ एक देश से दूसरे देशों में युवाओं के प्रवाह में महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद भारत अभी भी निरक्षरता और अज्ञान के विरूद्ध लड़ रहा है। लोगों को अपने परिवेश के बारे में बताना तथा उनके अधिगम को बढ़ाना भारत सहित समस्त विश्व के लिये चुनौती है, (एच.डी. आर. 2002)। दक्षिण एशिया सबसे ज़्यादा गरीबी से पीड़ित है, हालांकि कुछ सुधार अवश्य हुआ है। यह भी कहा जाता है कि सत्तर के दशक में चीन तथा अस्सी के दशक में भारत ने प्रगति कर कुछ हद तक अमीर देशों के साथ खाई को कम किया है। अब यह सारी दुनिया और विशेष रूप से भारत में महसूस किया गया है कि साक्षरता और शिक्षा एक ऐसी कड़ी है जो मानव अज्ञानता के साथ जुड़े कष्टों के मूलभूत मुद्दे को संबोधित करती है। इस विशेष वर्ग को अपने और आसपास के बारे में और अधिक जागरूक करने की आवश्यकता है। उनको अपनी अज्ञानता के निहितार्थ का बोध कराना होगा और उन्हें सशक्त बनाना पड़ेगा अन्यथा पूरी पीढ़ी जैसा कि पिछले कई दशकों से हो रहा है, अज्ञानता के अंधेरे में खो जाएगी। सभी के लिये शिक्षा, सभी के लिये साक्षरता तथा विशेषत: सभी के लिये अधिगम ऐसे क्रांतिकारी आंदोलन हैं जो दुनिया में हमारी आने वाली पीढ़ी को प्रभावित और एक नई दिशा देने वाले मौलिक मुद्दों को संबोधित करेंगे।

बुनियादी वास्तविकताएं

शब्द 'अधिगम' ऐसी लाखों अनसुनी आवाज़ों की याद दिलाता है जो अज्ञानता के अंधेरे में रहती हैं। उन्हें कभी ज्ञात नहीं होता कि वैश्विक घटनाएं उनके लिये क्या मायने रखती

* सह-प्रोफेसर, न्यूपा, नई दिल्ली-110016

हैं तथा किस प्रकार शिक्षा 'मुक्ति' के साधन के रूप में एक परिवर्तनकारी, क्रांतिकारी गतिविधि बन सकती है। 'प्रौढ़ शिक्षा' सबके लिये शिक्षा के लक्ष्य में सबसे ज्यादा उपेक्षित है। ग्लोबल मानीटरिंग रिपोर्ट (2010) के अनुसार 759 लाख वयस्क रोजमर्रा के जीवन में पढ़ने, लिखने तथा संख्यात्मक कार्यों के बुनियादी कौशल से वंचित हैं। इस समय विश्व में 759 लाख निरक्षर युवा तथा वयस्क हैं। शिक्षा में लैंगिक असमानता की विरासत को दर्शाते हुए इस संख्या में दो तिहाई महिलाएं हैं। लाखों बच्चे बुनियादी कौशल प्राप्त किये बिना ही स्कूल छोड़कर जा रहे हैं। उप-सहारा अफ्रीका के कुछ देशों में पांच साल की शिक्षा प्राप्त युवा वयस्कों में से 40 प्रतिशत वयस्क अनपढ़ हैं डोमिनिकन रिपल्बिकन, इक्वाडोर, ग्वाटेमाला में कक्षा 3 के आधे से कुछ कम छात्रों में पढ़ने की क्षमता बुनियादी कौशल से कुछ अधिक थी।

मानव विकास रिपोर्ट मानवदशा की उदासीन तस्वीर प्रस्तुत करती है जो कि बहुमूल्य मानव संसाधन है और प्राथमिक सुविधाओं से वंचित है तथा गरीबी में जीवनयापन करने पर मज़बूर है। वे अभी भी संघर्ष को मज़बूर हैं ताकि अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु जिससे वह जीवित रह सकें और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिये अच्छी कमाई कर सकें। उनके लिये पहली प्राथमिकता जीवन यापन के लिये कमाई है तथा शिक्षा और साक्षरता की महत्ता बाद में आती है। इस पूरी प्रक्रिया में, भारत के अनुभव से लगता है कि जब तक साक्षरता को सामाजिक अधिगम से एकीकृत नहीं किया जायेगा किसी भी प्रकार का परिवर्तन असंभव है।

विभिन्न विकासशील देशों की तुलना करते हुये, एच.डी.आर. रिपोर्ट (2000) उज़ागर करती है कि दक्षिण एशिया क्षेत्र में कुछ प्रगति अवश्य हुई है। एच.डी.आर. (2000) दर्शाती है कि यह क्षेत्र 'मानव गरीबी' से सबसे ज़्यादा प्रभावित है। एच.डी. आर. (2000) यह भी दर्शाती है कि उप-सहारा क्षेत्र में सबसे अधिक गरीबी है, जहाँ 2002 में भी स्थिति बहुत शोचनीय थी। हालांकि सत्तर के दशक में चीन तथा अस्सी के दशक के अंत में भारत ने धनी देशों के साथ की खाई को कुछ हद तक कम करने की कोशिश की, परन्तु अभी भी यह जानकर आश्चर्य होता है कि विकासशील विश्व में एक-तिहाई से ज़्यादा आबादी गरीबी में जीवनयापन करने के लिए मज़बूर है। यहाँ 1.3 बिलियन लोग 1 डालर से भी कम कमाते हैं। हम ऐसे व्यक्तियों के बारे में शिक्षा की योजना कैसे बना सकते हैं जबकि उनकी पहली प्राथमिकता अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह विश्व के लिये एक बहुत बड़ी चुनौती है। चुनौती

यह है कि सुनिश्चित किया जाये कि सभी व्यक्तियों को सतत् मानव तथा आर्थिक विकास हेतु ज्ञान तथा क्षमता प्रदान की जाये। इसको प्राप्त करने हेतु शिक्षा, साक्षरता तथा जगरूकता सभी को प्रदान करने की आवश्यकता है। विशेषत: बालिकाओं, महिलाओं तथा गरीबों को, जिससे कि सतत् विकास हेतु उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

किस प्रकार साक्षरता समाज में 'अधिगम' प्रदान कर सकती है?

अमर्त्य सेन का दृष्टिकोण था कि ''साक्षरता और पढ़ना-लिखना नहीं आना व्यक्तियों में बुनियादी रूप से असुरक्षा उत्पन्न करता है। गिनती, पढ़ना-लिखना एवं संवाद न कर पाना, व्यक्तियों में जबरदस्त अभाव को दर्शाता है।''

यह एक ऐसा समय है जहाँ साक्षरता और अधिगम शिक्षाशास्त्र और परिज्ञान से बढ़कर तकनीकी शक्ति में परिवर्तित हो गया है। अगर शिक्षा को इस परिवर्तित हो रहे विश्व में व्यक्तियों का हथियार बनाना है, तो इसे पूरे भूमंडल पर लोगों के बीच सम्पर्क बनाने का प्रयास करना होगा। सतत् विकास के लिए अंत:सांस्कृतिक समझ तथा सहानुभूति तथा बेहद गरीबी के माहौल में जी रहे लोगों के बीच एकता हेतु शिक्षा के मूल्यों तथा व्यवहार को विकसित करने की आवश्यकता है। शिक्षा के द्वारा एक अन्योन्याश्रित रूप में पूरी दुनिया की बुनियादी समझ विकसित करने की जरूरत है।

व्यक्तियों को ज्ञान तथा क्षमता की आवश्यता है, जिससे कि अगर वे चाहें तो अपने समुदाय की दिशा को प्रभावित कर सकें। इन तत्वों के बिना भूमण्डलीकरण की चुनौतियों का सामना करने में शिक्षा नाकाम रहेगी। शिक्षा और साक्षरता प्रदान करने हेतु लोगों को स्वयं के बारे में, अपने परिवेश तथा घटनाओं के प्रति जागरूक कराया जाए जिससे कि बेहतर उपलब्धि हेतु उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सके।

परन्तु वर्तमान में व्यक्तिगत शिक्षा तथा शिक्षा प्रदाताओं के स्तर पर बहुत कम कार्य हो रहा है। सभी के लिये कम से कम यह सुनिश्चित करना कि सतत् विकास के लिये सीखने का 'वैश्विक आयाम' अपने कार्यक्रमों के भीतर एक प्रमुख तत्व के रूप में वितरित किया जाये जिसमें समुदाय की व्याख्या और चर्चा अपनी राय के रूप में अधिक गंभीर रूप से व्यक्त करने में मदद कर सके तथा स्वयं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सके जबकि इस प्रक्रिया में विश्वास, शब्दावली और संचार कौशल का विकास हो सके। इस तरह शिक्षार्थी का सक्रिय अधिगम द्वारा अपने स्वयं के जीवन और आजीविका

के लिये जिसमें प्रासंगिक वैश्विक आयाम सम्मिलित हैं, के माध्यम से बुनियादी कौशल का विकास होगा। अनुप्रयोगों की समझ अलग-अलग हो सकती है लेकिन अधिगम जीवन की गुणवत्ता में सुधार, भविष्य की पीढ़ियों के लाभ के लिये जरूरत की समझ को विकसित करने को प्रमुखता से बनाये रख सकता है।

शिक्षा के बाधक कारक कौन से हैं?

दुनिया के 6 अरब लोगों की लगभग आधी आबादी कम से कम दो डालर प्रति दिन पर रहती है और इसका पाचवां भाग (1.2 अरब) कम से कम 1 डालर प्रतिदिन से भी कम, पर जीवन-बसर करती है जिसमें से 44 प्रतिशत अकेले दक्षिण एशिया में रहते हैं। अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन को शिक्षा ने प्रभावित किया है। (जी.एम.आर. 2010) दर्शाती है कि युवा और वयस्क के कौशल और अधिगम को वैश्विक आर्थिक संकट ने प्रभावित किया है। सभी के लिये शिक्षा कार्यसूची पर डाकार फ्रेमवर्क कार्ययोजना का तीसरा लक्ष्य यही था। युवा बेरोजगारी बढ़ने के साथ, सरकारों के पास निपटने के लिये कौशल विकास समग्र रणनीति का एक महत्वपूर्ण घटक है। अधिक मोटे तौर पर यह मान्यता है कि एक तीव्र ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में रोजगार, उत्पादकता और आर्थिक वृद्धि में कौशल की मांग बढ़ रही है। शैक्षिक विवरण तथा शैक्षिक वृद्धि में एक तरफ तथा दूसरी तरफ शिक्षा के माध्यम से आर्थिक वृद्धि पर आर्थिक नीति परिवेश के बीच एक स्पष्ट आकस्मिक अन्त:संबंध है। आज की शिक्षा अतीत की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिये। रोजगार के अवसर, कार्य-पद्धति तथा कैरियर लगातार आर्थिक परिवर्तन के साथ बदल रहे हैं। गरीब और हाशिये पर रहने वाले सबसे अधिक पुनर्जागरण से प्रभावित हैं। अंतरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस 2002 पर अपने संबोधन में अमर्त्य सेन ने नौकरी तथा लाभकारी रोजगार प्राप्त करने में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण बुनियादी घटक माना है। उनके शब्दों में किसी भी देश में जहाँ बुनियादी शिक्षा उपेक्षित है वहाँ अनपढ़ लोग वैश्विक वाणिज्य अवसरों का अपर्याप्त उपयोग कर पाते हैं। एक व्यक्ति जो निर्देश नहीं पढ़ सकता, सटीकता की मांग को नहीं समझता और विनिर्देशों की माँगों का पालन नहीं करता, आज की वैश्विक दुनिया में वह नौकरी प्राप्त करने में असफल है। आश्चर्य नहीं कि गरीबी कम करने के लिये वैश्विक वाणिज्य के अवसरों के सफल प्रयोग के सभी मामलों में एक व्यापक आधार पर बुनियादी शिक्षा का बहुत महत्व है, पहले से ही उन्नीसवीं सदी के मध्य में यह कार्य जापान में उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ देखा गया था। 1872 में जारी शिक्षा की मौलिक संहिता (1868 मे निजी पुन:स्थापन के तुरंत बाद)

सार्वजनिक प्रतिबद्धता के साथ जारी किया गया कि किसी समाज में एक अनपढ़ परिवार तथा परिवार में कोई अनपढ़ व्यक्ति नहीं होगा। जापान लगभग 1910 में पूरी तरह से साक्षर था, कम से कम युवाओं के लिये सन् 1913 तक जापान, हालांकि अमेरीका और ब्रिटेन से बहुत गरीब था फिर भी ब्रिटेन से अधिक तथा अमेरीका से दोगुनी से भी अधिक किताबें प्रकाशित कर रहा था। बाद में चीन, ताईवान, दक्षिण कोरिया और पूर्व एशिया में अन्य अर्थव्यवस्थाओं ने इसी तरह के मार्गों का अनुसरण करते हुये दृढ़ता से बुनियादी शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया। आर्थिक प्रगति को समझने तथा उनके वैश्विक बाजार की अर्थव्यवस्था को अच्छे से उपयोग करने के संदर्भ में उनकी प्रशंसा होती है और यह वास्तव में ठीक ही है। लेकिन बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में इन देशों की उपलब्धियों ने इस प्रक्रिया में मदद की है। जब लोग अनपढ़ हैं तो उनकी समझने और कानूनी अधिकारों को लागू करने की क्षमता को बहुत सीमित किया जा सकता है। यह उन लोगों के लिये जिनके अधिकार दूसरों के द्वारा बाधित हो रहे हैं, के लिये एक गंभीर बाधा है और यह निम्न स्तर के लोगों के लिये स्थायी समस्या है। वह अपने पढ़ने-लिखने, हक और माँग की असमर्थता के परिणामस्वरूप प्रभावी ढंग से अलग-थलग पड़े हैं। यह महिलाओं की सुरक्षा के लिये एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। महिलाएं अक्सर शिक्षा की कमी के कारण इनसे वंचित रहती हैं। दरअसल पढ़ने या लिखने के लिये सक्षम नहीं होना अल्पसुविधा प्राप्त महिलाओं के लिये एक बड़ी बाधा है, क्योंकि यह कानूनी तौर पर उनके सीमित अधिकारों के उपयोगों की विफलता बताता है (अपनी संपत्ति या अन्य संपत्ति के संबंध में अनुचित न्याय और अन्याय के विरूद्ध अपील के संदर्भ में)।

लैंकशायर की धारणा (1987) जिसमें बाब कार्बेट ने एक देश में विभिन्न श्रेणियों के लिये अधिगम के चार प्रकारों पर निम्नलिखित टिप्पणियां की है:

- कुछ लोग बुनियादी स्तर पर भी पढ़ना-लिखना या गणना नहीं जानते, ऐसे लोगों में उचित और अनुचित साक्षरता की कमी है।
- कुछ लोगों को शायद जानने, पढ़ने-लिखने और गणना की समझ है, परन्तु दुनिया के बारे में गंभीर विश्लेषण नहीं कर सकते। इस समूह में अपर्याप्त साक्षरता है, परन्तु पर्याप्त साक्षरता नहीं।
- कुछ विश्वविद्यालयों के सफल छात्रों को विभिन्न विषयों के मानक शैक्षिक मुद्दों के बारे में गंभीर और विश्लेषणात्मक समझ है लेकिन अन्याय के साथ

संरक्षित राजनीति और सामाजिक दुनिया के बारे में नहीं सोचते और वे अपने स्वयं की राजनीतिक वास्तविकताओं पर कार्य या सोच का अधिगम नहीं हैं। इस समूह को भी पुनः अनुचित साक्षर कहा जा सकता है।

- अंत में बहुत कम को उचित साक्षरता की ओर शिक्षित किया जा सकता है, जैसा कि बिन्दु 3 में वर्णित है। उनके महत्वपूर्ण कौशल और राजनीतिक परिष्कार संरचनात्मक और जीवनी की दृष्टि से विकसित किया जा सकता है, लेकिन अभी भी अपने उद्देश्य के सच्चे ज्ञान पर पहुंचने में गलती कर सकते हैं। एक बार पुनः इस तरह के समूह को अनुचित साक्षरता ग्रस्त समूह कहा जायेगा।

भारत का जो परिदृश्य है, वह उपर्युक्त से अलग नहीं है। यहाँ भी हम विभिन्न श्रेणियों में अनपढ़ लोगों को वर्गीकृत कर सकते हैं। लेकिन निश्चित रूप से इस पर अधिक ध्यान देने की जरूरत है। भारत को समृद्ध बनाने के लिये, लोगों का जीवन बेहतर गुणवत्तायुक्त बनाने हेतु, जो निम्नांकित चार उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेगा। इसके लिये लोगों के बीच सीखने की सुविधा की बेहद जरूरत है।

- सामाजिक प्रगति जो हर किसी की जरूरत को पहचाने।
- पर्यावरण का प्रभावी संरक्षण।
- प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग।
- आर्थिक और रोजगार के उच्च और स्थिर स्तर के रख-रखाव।

कुछ देशों में विकास हो रहा है और भारत उनमें से एक है। भारत पुनर्गठित हो रहा है और अपने राष्ट्रीय साक्षरता कार्यक्रम के विस्तार को अधिक दृढ़ता से महिलाओं, निम्न जाति समूहों और अल्पसंख्यकों पर ध्यान केंद्रित कर रहा है।

अधिगम के नए प्रतिमान की ओर : भारत पर प्रभाव

यदि कोई, भारत में आम जनता के बीच जीवन की गुणवत्ता में परिवर्तन लाने के बारे में गंभीर है, तो हमें भूमंडलीकरण ढांचे के भीतर स्थिति में पुनरूत्थान लाने की जरूरत है। जब नीति और निर्णयकर्त्ता, स्कूल, विश्वविद्यालय स्तर के साक्षरता कार्यकर्त्ता, सिविल सोसायटी की टीम, स्थानीय नेताओं के साथ-साथ काम करते हैं तो यह हमेशा सफल करेगा। इस तरह की टीम भविष्य के एजेंडे को बनाने में कारगर होंगी और वैश्विक

परिदृश्य के साथ भारतीयों को संबोधित करेंगी एवं आवश्यक परिवर्तन संग व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ सफल वैश्विक प्रथाओं का अनुकूलन होगा। केंद्रीय स्तर पर और सभी समाजों में बदलाव के लिये प्रयासों हेतु निर्देशों की चर्चा नीचे की गई है:

समुदाय के संदर्भ में अधिगम को समझना

हमें इस बात को मान्यता देनी चाहिये कि एक नहीं बल्कि कई प्रकार की साक्षरता हैं। जैसे ही हम अधिगम को एक कौशल रूपी सेट से अलग हटकर देखते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ कई अलग-अलग तरीके हैं जिन्हें पढ़ने और लिखने में उपयोग किया जा सकता है और प्रत्येक समय लोग साक्षरता के नये प्रकार विकसित कर रहे हैं। अपनी पुस्तक 'द सोशल माईन्ड' में जेम्स जी. बताते हैं कि साक्षरता किस प्रकार विभिन्न समुदायों के साथ जुड़ रही हैं, जिसके लिए हम सभी प्रयास कर रहे हैं। यह लोगों, वस्तुओं, बातचीत का विशिष्ट अंदाज, सोच, विश्वास और दुनिया में अपनी पहचान से निर्मित है (जी, 1990)। अक्सर हम समुदाय के नियमों से बहुत ज्यादा अवगत नहीं होते, परन्तु हम उनके बारे में शीघ्रता से जानने लगते हैं, जब हम किसी नये समूह या संस्थान में सम्मिलित होते हैं जो कि नियमों के नये तरीकों की परिकल्पना करता है और इसमें अपने आप को नौसिखिए की भांति पाते हैं। यह अधिगम के अनुप्रयोग को नया अर्थ प्रदान करता है, इसमें प्रत्येक समुदाय को अलग ईकाई समझा जाता है, तथा सीखने के मूलरूपी आदर्श के संदर्भ में अपनी स्वयं की व्याख्या करता है। अधिगम सभी के लिये सार्वभौमिक नहीं हो सकता, इसे एक विशेष फ्रेमवर्क में देखा जाना चाहिये, जो स्पष्ट रूप से विशेष समुदाय की आवश्यकता के अनुसार प्रासंगिक और स्थानीकृत होगा। यह उपागम साक्षरता के संदर्भ में व्यापक दृष्टिकोण को दर्शाता है, तथा सुझाव प्रदान करता है कि हमें ग्रंथों से परे पढ़ने और लिखने के साथ जुड़ी प्रथाओं को सम्मिलित करना चाहिए। इस दृष्टिकोण का सार यह है कि साक्षरता, क्षमता और आवश्यकताओं को कौशल के पूर्ण स्तर के आधार पर नहीं समझ सकती, बल्कि यह एक संबंधपरक अवधारणा है, सामाजिक और संचार व्यवहारों के साथ जिसमें व्यक्ति का जीवन दुनिया के विभिन्न ज्ञान क्षेत्र में संलग्न है। यह साक्षरता को इतिहास और सामाजिक स्थिति के संदर्भ में देखती है।

आजीवन अधिगम के रूप में साक्षरता को समझना

हैमिल्टन नृवंशविज्ञान साक्षरता अध्ययन से यह पुष्टि करते हैं कि सतत् साक्षरता के लिये आजीवन सीखने की रणनीति हेतु हमें ज्ञान सृजन के तीन क्षेत्रों पर गंभीर ध्यान देने की

जरूरत है :

(1) साक्षरता सीखने और समुदायों में उसके उपयोग की जानकारी

(2) समुदाय के संदर्भ में स्थानीय भाषा सीखने की प्रक्रिया

(3) अन्यों से हटकर सांस्थानिक प्रक्रियाएं जो हमें विशिष्ट ज्ञान और विशेषज्ञता प्रदान करे

ऐसा करने में हमें अधिगम एक सामाजिक संबंधपरक प्रक्रिया दिखती है, जहाँ व्यक्ति दूसरे से अलग नहीं है और जहां अधिगम परिवेश, प्रक्रिया और संसाधन के मुद्दों को व्यवस्था का एक अभिन्न अंग माना जाता है। समय आ गया है कि अब हम साक्षरता के लिये परिस्थितियों के निर्माण हेतु पढ़ने और लिखने से परे जाकर आजीवन अधिगम को संस्कृति, प्रतिस्पर्धा और रोजगार के क्षेत्र में परिवर्तन के लिए अपनाएं।

स्कूल-समुदाय संबंधों को मज़बूत बनाना

सीखने के लिये वैश्विक चिंताओं पर उत्पन्न साहित्य में सीखने वाले और सीखने का एक समग्र दृष्टिकोण दर्शाया गया है। अधिगम के लिये परिवार के भीतर आपसी सहयोग का महत्व है। शिक्षा आयोग (1964-66) ने स्कूल शिक्षा में समुदाय की बेहतर भागीदारी सुनिश्चित करने के संदर्भ में सिफारिश की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में ग्राम शिक्षा समितियों की स्थापना के माध्यम से समुदाय-स्कूल साझेदारी पर बल देती है। आगे 73वां और 74वाँ संविधान संशोधन जिला, ब्लॉक, क्लस्टर और संस्था स्तर (स्कूल) पर स्कूलों के प्रबंधन हेतु प्रशासन को सशक्त बनाने पर बल देता है। इसके अलावा शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 स्कूल, समुदाय संबंध को प्रत्येक स्कूल के लिये स्कूल प्रबंधन समिति बनाने और उन्हें संबंधित स्कूल हेतु निर्णय लेने के लिए सशक्त बनाता है। हालांकि एस.एम.सी. के सदस्यों के गठन को स्पष्ट रूप से अधिनियम में निर्दिष्ट किया गया है, लेकिन समुदाय और स्कूल के विकास कार्यक्रमों को एक बड़े वैश्विक साक्षर समुदाय के एक अभिन्न अंग के रूप में सामान्य लोगों को 'अधिगम' के अनुभव प्रदान करने हेतु अवसर प्रदान करना चाहिए।

सरकार और विकास क्षेत्र का अभिसरण

गरीबी और स्वास्थ्य सेवाओं की अव्यवस्था को देखते हुये, यह महसूस किया गया है कि अकेले शिक्षा जयादा कुछ नहीं कर सकती। शिक्षा को पर्यावरण, स्वच्छता, कृषि

उद्योग जैसे अन्य विकासात्मक क्षेत्रों में सामंजस्य बैठाना होगा। आज का समय भी शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्र के बीच बढ़ावा देने की माँग करता है, जिससे लोगों को यथार्थ रूप से रोजगार प्राप्त हो सके।

व्यापक फैलाव के लिये अवसरों का सृजन

औपचारिक रूप से सीखने के संरचित अवसर समाज के विशेष स्तर को या सबसे अमीर और अमीर परिवारों के लिये रहे हैं। स्वैच्छिक संगठनों तथा गैर-सरकारी संगठनों, सिविल सोसायटी द्वारा भौतिक स्थान हेतु अनौपचारिक मंच तैयार किये जा सकते हैं, जिससे कि लोगों और समूहों को मिलने-जुलने, विचारों का आदान-प्रदान, प्रदर्शन, साक्षरता और अधिगम के लिये उपागम बिन्दु जैसे पुस्तकालय, साईबर कैफे, बुक-शॉप, परामर्श केन्द्र इत्यादि तथा प्रिन्ट, वीडियो, इलैक्ट्रॉनिक तरीकों से प्राप्त होने वाली जानकारी की पहुँच द्वारा समुदाय कि, विशेषज्ञों के साथ आभासी या वास्तविक बैठक को व्यावहारिक रूप दिया जा सके। भारत के गांवों के लिये हाल ही में प्रारंभ साईबर पंचायत 'शाला' या एन.जी.ओ. इलैक्ट्रानिक नेटवर्किंग प्रोग्राम द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी आधुनिक स्वास्थ्य और शिक्षा, शहर में रहने वाले लोगों और देश के 60,000 गांवों के लिये उपलब्ध है। 'एजुसेट' सैटेलाईट ने, जो कि पूरी तरह से ग्राम स्तर पर विकास और प्रशिक्षण के लिये संचार नेटवर्क की स्थापना हेतु तैयार किया गया है, यह इस दिशा में एक सकारात्मक पहलु हैं।

नीति-निर्देशों का निर्माण

निम्नलिखित मुद्दों पर बल देते हुये, फ्रेमवर्क के अंतर्गत नीति तैयार करने की आवश्यकता है:

(1) सामाजिक वंचित अवसरों को समझना

(2) संस्थानों का सुदृढ़ीकरण

(3) शिक्षा के लिये संगठन का सुदृढ़ीकरण

(4) निरंतर शिक्षा के अवसरों के लिये वित्त को बढ़ाना

इस फ्रेमवर्क के अंतर्गत, स्थानीय दृष्टिकोण के अनुसार लोगों की शिक्षा को व्यवस्थित किया जा सकता है। एक विशिष्ट गांव की भौगोलिक सीमाओं और स्थिति के अनुरूप

नीति तैयार और परिवर्तित करनी होगी। समतल इलाकों के दूरवर्ती क्षेत्रों में शिक्षा का स्वरूप दुर्गम, समुद्री और अन्य दुर्गम दूरवर्ती इलाकों की शिक्षा से भिन्न होता है। ऐसी स्थिति में संदर्भगत शिक्षा का महत्व और बढ़ जाता है क्योंकि यहाँ प्रत्येक स्तर पर विभिन्नता होती है; जैसे स्थलाकृति, भूगोल, परिवेश, मौसम, संस्कृति, रोजगार, प्रवास-प्रवृत्ति, समाज का संगठन (बच्चे, आयुवर्ग, वृद्ध लोग), लोगों की शिक्षा का स्तर, संसाधनों की उपलब्धता, दोहन एवं आवंटन।

स्पैक्ट्रम का विस्तार करना

''अगर शहर, वैश्विक युग में, शहरी उत्थान और सामाजिक समावेश के दुहरे कार्यों को संबोधित करते हैं, तो उन्हें अधिगम में पुनर्जागरण की आवश्यकता होगी''(रानसन 1992)। इसके लिये जिस समुदाय में वे रहते और काम करते हैं उस समुदाय की नई रचना हेतु लोगों के लिए क्षमताओं को विकसित करना होगा। अब यह स्पष्ट है कि एक 'नई शिक्षा' एक नये युग के लिए उभर रही है। समुदायों की क्षमता के विकास हेतु सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठन नई साझेदारी का विकास कर रहे हैं।

'नागरिकता' की व्यापक अवधारणा एक समाज है जो अपने नागरिकों के लिए स्वयं के संसाधनों का अधिग्रहण करने और सार्वजनिक मूल्यों पर स्वयं को व्यक्त करने की क्षमता विकसित करने के लिए सक्षम बनाता है। व्यक्तियों को एक दूसरे को पहचानने के लिए कई मुहिम चलाई गई जो समान अधिकार और एक सी स्थिति में रहते हैं और सार्वजनिक क्षेत्र में स्वयं को व्यक्त करते हैं। भारत पिछड़े, वंचित और गरीबों के लिये स्थानीय शासन और शिक्षा सेवाओं के विकेंद्रीकरण की व्यवस्था के माध्यम से इस दिशा में प्रगति कर रहा है। सबसे ज्यादा भुला दिया गया वर्ग अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने में सबसे जयादा क्रियाशील है जिसे परंपरागत मॉडल से बाहर थे और लैंगिक-वर्ग के अनुसार वंचित थे।

ब्रिटेन में 'अधिगम शहरों' की अवधारणा को लेकर, यह महसूस किया गया है कि भारत भी इसे एक मॉडल के रूप में अपना सकता है। 'अधिगम शहर' की अवधारणा के अनुसार पुनः उत्थान के लिए सबसे ऐसी परिस्थितियों का सृजन करना है। जिससे कि संवाद पूर्ण और कर्मकर्त्ता समुदाय का उदय हो सके। कारा और रॉनसन (1998) और कारा सं (1998) दो प्रवृत्तियों, के बीच संभावित तनाव को कम करने हेतु यह माना जाता है कि साझेदारी को व्यापक सार्वजनिक संवाद का भाग बनाना होगा;

जिसका उद्देश्य बदलते हुए वैश्विक परिदृश्य में शहर, कस्बे और क्षेत्र के भविष्य को स्पष्ट करना है। यह समझ कई यूरोपीय समुदायों ने सीखी है। वास्तविक अधिगम समुदाय अपने नागरिकों के साथ नये तरीके सीखेंगे जिससे कि वे अपने समुदायों के नियंत्रण और परिवर्तन में भागीदारी कर सकेंगे। यह प्रक्रिया ऐसे नागरिकों की मांग करता है जिनके पास अपनी जरूरतों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने का कौशल है। यह वही कौशल है जो कार्य के लिए आवश्यक है। यह शिक्षा प्रणाली है, जो अधिगम की संस्कृति की ओर समुदाय को ले जाती है और निश्चित तौर से समुदाय के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

अधिगम के लिए सक्षम स्थितियां बनाना

सभी के लिए शिक्षा को बढ़ावा, प्रोत्साहन तथा वृद्धि हेतु, तथा विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में लोगों के मामलों के संदर्भ में प्रबंधन बोर्ड के सामुदायिक रूप से गठन की समस्या के समाधान हेतु व्यावहारिक उपागमों को तैयार करना एक समाधान लगता है। इन बोर्डों को लोगों के लिए प्रतिबद्धता और जवाबदेही तय करने के लिए सदस्यों का सभी प्रकार के अधिकार देने होंगें: बोर्ड, जिन मुद्दों को संबोधित कर सकता है, वे निम्नांकित हैं:

- समुदायों के विचारों और चिंताओं को सुनना,
- उपलब्ध रोजगार अवसरों के संदर्भ में नया परिप्रेक्ष्य,
- छात्रों, अभिभावकों, अध्यापकों, विद्यालयों तथा शैक्षिक नेताओं को प्रभावी, शैक्षिक रणनीति तैयार करने में अधिक भागीदारी हेतु सिफारिश,
- समुदायों के परामर्श द्वारा नवाचारी समाधानों का विकास,
- रिपोर्ट के निष्कर्षों और सिफारिशों को निर्णयकर्त्ता अधिकारियों को प्रस्तुत करना।

बोर्ड का गठन स्थानीय शिक्षित लोगों, स्थानीय नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं, साक्षरता कार्यकर्त्ताओं, सरकार के प्रतिनिधियों, पंचायती राज संस्थानों के प्रतिनिधियों, ग्राम शिक्षा समितियों आदि द्वारा होगा। इसके लिए निम्नांकित को अपनाया जा सकता है:

- प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में निरंतर भ्रमण और उपलब्धता तथा पहुंच पर सर्वेक्षण, इन स्कूलों के नामांकन तथा उपस्थिति, जलवायु परिस्थितयां, स्कूल में आने वाले बच्चों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, शैक्षिक सुविधाओं

की गुणवत्ता तथा विकलांग, स्थानीय बच्चे तथा विभिन्न संस्कृति, धर्म तथा जातीय पृष्ठभूमि के बच्चों की शिक्षा समाविष्ट है। परिवारों के लिए लागत, सामाजिक सुरक्षा, निधि, अध्यापक उपलब्धता के संदर्भ में संबोधित मुद्दों का परीक्षण तथा दूरवर्ती, ग्रामीण, तटीय तथा पहाड़ी बस्तियों में अध्यापकों के लिए प्रोत्साहन।

- स्कूलों में शिक्षा, समुदाय केंद्र, जन शिक्षण केंद्र, प्रौढ़ शिक्षा केंद्र, औपचारिक तथा वैकल्पिक शिक्षा केंद्र- आवश्यकता प्राथमिकताओं पर आधारित तथा स्कूल विशेष की जरूरत हेतु विकास योजना। यहां योजना की तैयारी हेतु, प्रत्येक संस्थान को अलग ईकाई माना जाए। कोई व्यक्ति, समुदाय और राष्ट्र साक्षरता और अधिगम के बगैर नहीं रह सकता। आज शैक्षिक, सामाजिक और कल्याण कार्यक्रमों की आवश्यकता सभी के लिए साक्षरता हेतु, बेहद आवश्यक है। इस शिक्षा का उद्देश्य सतत् विकास हेतु जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना है, अन्यथा पूरी पीढ़ी अज्ञानता के उस घेरे में डूब जाएगी। साक्षरता और अधिगम को समुदाय का अभिन्न अंग बनाने हेतु विश्व के प्रत्येक देश की सरकार को नीति- निर्देश, सरकारी तथा अ-सरकारी संगठनों के बीच सक्रिय भागीदारी, स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसे अंतरक्षेत्रीयता पर बल देना होगा। साक्षरता, शिक्षा तथा सतत् अधिगम द्वारा देश के लगातार विकास दृष्टिकोण योगदान हेतु उन्मुख प्रक्रियाओं की आवश्यकता है। इस दिशा में भारत ने पहले से ही छोटे-छोटे प्रयासों और पहल के माध्यम से अपनी यात्रा शुरू कर दी है।

संदर्भ

कारा, एस., लांड्री, सी. एंड रॉनसन, एस. (1998) द *लर्निंग सीटी फार द लर्निंग एज* वर्किंग पेपर 10. लन्दन: कमेडिया इन एसोशिएसन विद डेमोस

कारा, एस. एंड रॉनसन, एस. (1998) *प्रैक्टिस, प्रोग्रेस एंड वेल्यू: लर्निंग कम्यूनिटी: एसोसिएशन द वेल्यू दे एड.* लन्दन: डीएफईई/लर्निंग सीटी नेटवर्क

कूल, डी. (1996) इज क्लास ए डिफरेंस दैट मेक्स ए डिफरेन्स? *रेडीकल फिलासॉफी, 77:* 17-25

गी, जे. (1990) ''द न्यू लिट्रेसी स्टडीज: फ्राम 'सोसियली सिचएटेड' टू द वर्क आफ द सोशल'' इन बार्टन, डी., हेमीलटन, एम एंड इवानिक, आर. (1999) सिचुएटेड लिट्रेसीज, रूटलेज

गी, जे. (1990) सोशल लिंगुअस्टिक एंड लिट्रेसीज : आइडिओलॉजी इन डिस्कोर्सेज, द फालमर प्रेस।

गी, जे. (1990) सोशल लिंगुअस्टिक एंड लिट्रेसीज : आइडिओलॉजी इन डिस्कोर्सेज, द फालमर प्रेस।

भारत सरकार (2009) द *राइट आफ चिल्ड्रन टू फ्री एंड कम्पलसरी एजूकेशन एक्ट,* नं. 35 ऑफ 2009, द गजट ऑफ इंडिया, एक्स्ट्रा ऑरिडनरी पार्ट 2, सेक्शन 1, नई दिल्ली

ग्रीफिन कोलिन, लाइफलॉन्ग लर्निंग : पॉलिसी स्ट्रॅटेजी कल्चर

www.open.ac.uk/.../papers/393B8319-0006-659F-0000015700000157_CGriffin-Paper-LifelongLearning.doc

लंकाशायर कोलिन (1987) लिट्रेसी, स्कूलिंग एंड रिवोल्यूशन, न्यूयार्क: द फाल्मर प्रैस, 260 पीपी. कमेंट्स आफ बॉब कॉर्बेट, फाल 1989 http://www.webster.edu/~corbetre/philosophy/education/lankshear.html

मार्टिन, जे. एंड विन्सेंट, सी. (1999) 'पेरेन्टल वॉइस; एन एक्सप्लोरेशन, इन द इन्टरनेशनल जर्नल इन सोशियोलॉजी ऑफ एजूकेशन, 9(2) : 133–154

मार्टिन, जे., मैक केवन पी., निक्शोन, जे. एंड रॉन्सन एस. (1997) 'स्कूल गर्वनेन्स फॉर सिविल सोसायटी: रिडिफाइनिंग द बाउन्ड्री बिटवीन स्कूल्स एंड पेरेन्ट्स' लोकल गवर्नमेंट स्ट्डीज, 22 94): 210–228

मैरी हेमिलटन सस्टेनेबल लिट्रेसीज एंड द इकोलॉजी ऑफ लाइफलोंग लर्निंग

मुखोपाध्याय, मर्मर (2002) रूरल स्कूल्स एंड कम्युनिटी डवलपमेंट: इंडियन स्केनेरियो, बीजिंग चीन

ओईसीडी 1997 लिट्रेसी स्किल फॉर द नॉलेज सोसायटी पेरिस: ओईसीडी. आर्गेनाइजेशन फार इकॉनामी को ऑपरेशन एंड डवलपमेंट (ओईसीडी) (1996) लाइफलोंग लर्निंग फार ऑल, पेरिस: ओईसीडी

रामदास ललित (1997) द चेंलेज एंड द पोटेंशियल स्पीच बाई आईसीएई, जुलाई 14, 1997 *http://www.web.net/icae/english/openlal.htm*

रॉन्सन एस. (1992) टूवार्डस द लर्निंग सोसायटी, एजूकेशन मैनेजमेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन, 20(1): 68–79

रॉन्सन एस. मार्टिन जे., मैक केवन, पी. एंड निक्सोन, जे. (1996) टूवार्डस ए थ्योरी आफ लर्निंग ब्रिटिश जर्नल आफ एजुकेशन स्टडीज, 44(1): 9–26

रॉन्सन स्टेवर्ट रिकॉगनाइजिंग द पेडॉगॉगी आफ वॉइस इन ए लर्निंग कम्यूनिटी http//www.open.ac.uk/lifelonglearning/papers/394F796D-0001-7Ad4-0000015700000157.html

सेन, अर्मत्य प्रजेंटेशन ऑन इन्टरनल लिट्रेसी डे 2002

द ग्लोबल लर्निंग चैलेंज, स्ट्रेन्थनिंग ग्लोबल पर्सपैक्टिव्स इन लाइफ लोंग लर्निंग, 6 नवम्बर 2002 http//www.niace.org.uk/news/Docs/Global_Ing_challenge_seminars.pdf

यूएनडीपी (2000) हूमन डवलपमेंट रिपोर्ट 2000, *डीपनिंग डेमोक्रेसी इन ए फ्रैग्मेंटेड वर्ल्ड,* नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस

यूएनडीपी (2002) हूमन डवलपमेंट रिपोर्ट 2002, *हूमन राइट्स एंड हूमन डवलपमेंट,* नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस

यूएनडीपी (2003) हूमन डवलपमेंट रिपोर्ट 2003, *मिलेनियम डवलपमेंट गोल्स: ए कॉम्पेक्ट अमंग नेशन्स टू इन्ड हून पावर्टी,* नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस

यूनेस्को (1996) लर्निंग,: द ट्रेजर विदइन (द डेलोर्स रिपोर्ट) लन्दन: यूनेस्को/एचएमएसओ

यूनेस्को (2010) इएफए ग्लोबल मॉनीटरिंग रिपोर्ट, एजुकेशन फार ऑल, रीचिंग द मार्जिनालाइज्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस

यीटमैन, ए. (1994) पोस्टमॉर्डन रिवाइजनिंग आफ द पॉलिटिकल. लन्दन: रूटलेज

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 20011

नगरीय क्षेत्र के अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

आर.एल अंबेकर*

लड़कियों की शिक्षा हेतू विविध स्तरों पर महत्वपूर्ण सुधार हो रहे हैं जिससे शिक्षा के प्रवाह में लिंग विषयक विषमता कम होने में सहायता हुई। इसके काफी परिणाम शहरी क्षेत्र में दिख रहे हैं तथा विविध शोध पत्रिकाओं में इस संदर्भ में लेखन हो रहा है। क्या सरकारी स्कूलों में अध्ययनरत लड़कियों की शिक्षा के प्रति उनके अभिभावकों का पूर्णत: अनुकूल दृष्टिकोण है। इसका मूल्यांकन करने हेतु किया गया यह एक प्रयास है।

प्रस्तावना

व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र विकास में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षा से व्यक्ति में संवेदनशील वास्तविक मानवीय वर्तन का निर्माण होता है। शिक्षा प्राप्त करना केवल पुरुष का अधिकार नहीं वह स्त्री का भी अधिकार है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से शिक्षा विषयक प्रवृत्ति को यदि देखा जाये तो शिक्षा विशिष्ट व्यक्ति, विशिष्ट जाति विशिष्ट लिंग पर आधारित रही है, जिसका प्रभाव आज भी हमारी समाज व्यवस्था पर छाया हुआ है, जो कि लिंग आधारित शिक्षा विषयक मतभेद को प्रस्तुत करता है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शिक्षा का अधिकार किसी व्यक्ति, लिंग या जाति का नहीं वह सभी मानव का अधिकार है और समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा मिलनी चाहिये इसके लिये महात्मा ज्योतिराव फूले, सवित्रीबाई फूले, राजर्षी शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहाब आंबेडकर महात्मा गांधी महर्षि धोंडो केशव कर्वे आदि समाज सुधारकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा और प्रतिकूल सामाजिक व्यवस्था में भी शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया है। वैदिक काल में स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था, लेकिन मध्य युग में स्त्री शिक्षा को नकारा गया है। बौद्ध, जैन आदि धर्म में स्त्री शिक्षा का

* प्राचार्य, जिला शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान, अकोला-444002, महाराष्ट्र

समर्थन किया गया है। ब्रिटिश शासन काल में 1813 में चार्टर्ड एक्ट द्वारा भारतीय शिक्षा पर ध्यान दिया जाने लगा, लेकिन इसमें स्त्री शिक्षा का उल्लेख नहीं मिलता। वुड्स डिस्पैच में स्त्री शिक्षा पर ध्यान दिया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान में मूलभूत अधिकार के रूप में शिक्षा को सम्मिलित किया गया, जिससे कि स्त्री शिक्षा के संबंध में पूर्व निर्मित असमानता को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान किए गये है, जिससे स्त्री शिक्षा का प्रतिशत प्रमाण बढ रहा हैं, लेकिन जिस प्रमाण में पुरुषों की साक्षरता एवं विकास में वृद्धि हुई उसकी तुलना में स्त्री शिक्षा एवं विकास की मात्रा कम ही है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में भी इसमें भिन्नता पायी जाती है। 2001 की जनगणना के अनुसार आदिवासी क्षेत्रों में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत 34.76 तथा पुरुष साक्षरता का प्रतिशत प्रमाण 59.17 था। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत प्रमाण 46.70 एवं पुरुष साक्षरता का प्रतिशत प्रमाण 71.40 था। शहरी क्षेत्रों में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत प्रमाण 73.20 एवं पुरुष साक्षरता का प्रतिशत प्रमाण 86.70 था। इससे स्पष्ट होता है कि स्वातंत्रता प्राप्ति के 63 साल पश्चात भी स्त्री पुरुष शिक्षा के प्रमाण में काफी अधिक अंतर देखने को मिल रहा है। वर्तमान में स्त्री हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ साथ साथ कार्य कर रही है। स्त्री शिक्षा में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, लेकिन यह वृद्धि केवल नगरीय क्षेत्रों में हमें देखने को मिलती है। ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्र आज भी स्त्री शिक्षा के प्रति उपेक्षणीय प्रवृत्ति को बढावा दे रहे हैं। आज भी स्त्री का क्षेत्र घर तक ही सीमित रखा जा रहा है। शिक्षा के सबंध में लड़का एवं लडकी का यह अंतर करके शिक्षा से लड़कियों को दूर रखा जा रहा है, या तो नाममात्र नि:शुल्क शिक्षा स्थानों पर उन्हें भेजा जाता है। लड़की की शिक्षा प्राप्त करने की कितनी भी इच्छा हो, उसके शिक्षा प्राप्त करने के मार्ग मे पारिवारिक, सामाजिक, बाधायें उत्पन्न होती हैं या तो की जाती हैं। तथा लड़के को शिक्षा प्राप्त करने के लिये सदा प्रोत्साहित किया जाता है चाहे उसकी शिक्षा प्राप्त करने कि इच्छा हो या ना हो। शिक्षा विषयक सुविधाओं के संन्दर्भ में भी लड़का एवं लड़की यह लिंग आधारित पक्षपातपूर्ण व्यवहार हमें दिखाई देता है। इसी प्रकार उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहन, गांव या निवास स्थान से बाहर शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति, विद्यालय, अभ्यासक्रम चयन के क्षेत्र में भी लड़का एवं लड़की ऐसा पक्षपातपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित होता है। चाहे उनके अभिभावक शिक्षित हों या अशिक्षित, शहरी हो या ग्रामीण, यह पक्षपात समाज व्यवस्था में दिखाई देता है।

लड़कियों की शिक्षा के लिए केवल पुरुष वर्ग का ही नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं

अपितु स्त्री वर्ग भी लड़कियों की शिक्षा को लड़कों की अपेक्षा कम महत्व देती है। इस समाज विरोधी प्रवृत्ति के लिए विभिन्न तत्व आदिवासी, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में सक्रिय हैं। जो कि स्त्री शिक्षा को निरुत्साही कर रहे है। अत: शिक्षा विकास हेतु हो रहे विभिन्न प्रयासों के पश्चात तथा सभी क्षेत्रों में विद्यालयीन सुविधाओं की स्थापना, सर्व शिक्षा अभियान जैसे राष्ट्रीय शिक्षा विषयक कार्यक्रमों से तथा शिक्षा का अधिकार 2009 आदि प्रयासों के पश्चात अभिभावकों की लड़कियों की शिक्षा के प्रति जो परम्परागत विचार प्रणाली थी उसमें सुधार हुआ है? और यदि सुधार हुआ है, तो समानता के आधार पर आदिवासी क्षेत्रों के अभिभावक (माता-पिता) ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के अभिभावकों (माता-पिता) का अपनी लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण मे क्या अंतर है? इसका अध्ययन करना आवश्यक है। तात्पर्य स्त्री शिक्षा के संदर्भ में कितनी भी योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन किया जाए लेकिन जब तक अभिभावकों की अपनी लड़कियों की शिक्षा के प्रति सोच, या परम्परावादी दृष्टिकोण जब तक परिवर्तित नहीं होता, स्त्री शिक्षा विषयक योजना के अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति होना सम्भव नही है। अंत: अभिभावकों का अपनी लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना अति आवश्यक है।

शोध की आवश्यकता

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किए गये हैं, जिससे स्त्री की वर्तमान स्थिति में अपेक्षणीय परिवर्तन होने में सहायता हुई। वर्तमान मे प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं जिसके लिए सामाजिक जागरूकता समाज में शिक्षा का प्रसार प्रचार, संविधानात्मक अधिकारों के प्रति जागरूकता एवं समझ महत्वपूर्ण है।

लेकिन वर्तमान में जो स्त्री शिक्षा एवं स्त्रियों की स्थिति को हम देख रहे हैं वह स्थिति सभी स्त्रियों के संदर्भ में लागू नहीं हो सकती केवल औद्योगीकरण, नागरीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत जो समाज शहरी भागों में सम्मिलित हुआ है उनके संदर्भ में स्त्री शिक्षा एवं स्त्री विकास की समझ विकसित हो रही है, जिससे स्त्री विकास एवं स्त्री शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण भी दिन प्रतिदिन विकसित हो रहा है। लेकिन यह स्थिति विविधतापूर्ण भारतवर्ष के सभी क्षेत्र में नहीं है। आज भी ग्रामीण क्षेत्र में स्त्री विकास एवं स्त्री शिक्षा के प्रति पूर्णतया अनुकूल दृष्टिकोण निर्माण नहीं हो सका केवल औपचारिक तौर पर एवं लड़कियो की शिक्षा हेतु प्राप्त सुविधाओं को ध्यान में रखकर लड़कियों को विद्यालय भेजा जाता है तथा उसका औपचारिक रूप से उसका विद्यालय मे नामांकन

किया जाता है। इस ग्रामीण समाज में आज भी स्त्री शिक्षा के प्रति उपेक्षणीय दृष्टिकोण रहा है। आदिवासी क्षेत्र में तो स्त्री शिक्षा एवं स्त्री विकास की संकल्पनात्मक रूपरेखा क्या है? इसका पता भी नहीं हैं। आज भी ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्र में स्त्री का क्षेत्र केवल घर तक ही सीमित है जिसके लिये विभिन्न स्थानीय सामाजिक, सांस्कृतिक विचारधारा जिम्मेदार रही है। उसका प्रभाव आज की स्त्री शिक्षा पर भी रहा है। शहरी क्षेत्र मे नगरीकरण प्रक्रिया का विकास, शिक्षा प्रणाली का विकास एवं अभिभावकों की जागरूकता मे वृद्धि के कारण लड़कियों की शिक्षा के प्रति उनका सकारात्मक दृष्टिकोण निर्माण होने मे मदद हुई लेकिन आज भी बहुतांश शहरी अभिभावक लड़कियों की शिक्षा के संदर्भ में लिंग विभेदीकरणात्मक पक्षपात करते है, यह प्रवृत्ति पिछड़े वर्गों के साथ साथ उच्च सामाजिक वर्ग वाले अभिभावकों में भी देखने को मिलती है।

तात्पर्य यह है कि स्त्री शिक्षा के विकास हेतु विभिन्न प्रयासों एवं कार्यक्रमों के पश्चात आदिवासी, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के अभिभावकों का अपनी लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कितना अंतर है, तथा शहरी, ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्र के साक्षर एवं निरक्षर अभिभावकों में लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कितना अंतर है, इसकी जानकारी प्राप्त करके इस अंतर को कम करने हेतु आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करने हेतु यह अध्ययन आवश्यक है जिससे लड़कियों की भावी शिक्षा के प्रसार प्रचार हेतु नयी दिशा प्रदान होने में मदद् होगी।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के लिए निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है:

- शहरी क्षेत्र के अभिभावकों (माता-पिता) का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
- शहरी, क्षेत्र के साक्षर अभिभावकों (माता-पिता) का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
- शहरी क्षेत्र के निरक्षर अभिभावकों (माता-पिता) का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

शोध की सीमाएँ

प्रस्तुत शोध कार्य में शहरी क्षेत्र में निवासरत एवं उच्च प्राथमिक कक्षा 5,6,7 में अध्ययनरत लड़कियों के माता एवं पिता का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का ही अध्ययन किया गया है।

- अभिभावकों के अंतर्गत लड़कियों को जन्म देने वाले माता एवं पिता को लिया गया है, जो उसका पालन-पोषण कर रहे हैं।
- प्रस्तुत शोध कार्य में चयनित अभिभावकों की साक्षरता एवं निरक्षरता को ध्यान में लेकर न्यादर्श का चयन किया गया है।
- अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण को देखने के लिए उपकरण का निर्माण स्वयं द्वारा किया गया है।
- प्रस्तुत अध्ययन मे न्यादर्श का चयन स्तरीकृत असमानुपातिक प्रविधि से किया गया है।

शोध का सीमांकन

प्रस्तुत शोध का सीमांकन निम्न प्रकार से निर्धारित किया गया है:

- प्रस्तुत शोध कार्य मे ंचयनित अभिभावकों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिती, सांस्कृतिक स्थिति को ध्यान में नहीं लिया गया।
- अभिभावकों में लड़कियों को जन्म देने वाले माता पिता अभिभावकों के अतिरिक्त अन्य अभिभावकों को अध्ययन में नहीं लिया गया।
- प्रस्तुत शोध कार्य में अभिभावकों की आयु को ध्यान में नहीं लिया गया।
- प्रस्तुत शोध में अभिभावकों की शिक्षा स्तर को ध्यान में नहीं लिया गया। केवल साक्षर निरक्षरता विषयक स्थिति को ही ध्यान मे लिया गया है।
- प्रस्तुत शोध ने चयनित अभिभावकों के परिवार का आकार तथा उन्हें कितने लड़के या लड़कियां हैं, इसे ध्यान में नहीं लिया गया।

साहित्य का पुनरावलोकन

- परवीन निशांत: ''मुस्लिम बालक एवं बालिकाओं में शैक्षणिक पिछड़ापन एक अनुभवात्मक अध्ययन''
- पटेल हर्षद- ''बालकों के प्रति अभिभावकों का दैनिक व्यवहार में लिंग-आचरण का अध्ययन (2005),
- चौधरी सुजीत कुमार- ''उच्च शिक्षा में महिलाओं की स्थिति एवं व्यावसायिक भेदभाव'' (2007)
- Sudhakar C. "Universalization of girl education: Community plarticipation A study of weavers."
- अवस्थि रीता, पांण्डे उमाशंकर: ''प्राथमिक शिक्षा की सार्वभौमिकता में विशेषकर बालिका शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोध''

- Chaturvedi, Srivastava N. "Assessment of different attitude towards girls' child in selected districts of North India"

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध कार्य सर्वेक्षण प्रणाली की सहायता से किया गया है:

- **जनसंख्या :** प्रस्तुत शोध कार्य में अकोला शहर के अंतर्गत आने वाली सभी सरकारी विद्यालयों में कक्षा 5,6,7 में अध्ययनरत लड़कियों के साक्षर एवं निरक्षर माता तथा पिता जिन्होंने लड़कियों को जन्म दिया है तथा उनका पालन-पोषण कर रहे है। प्रस्तुत शोधकार्य की जनसंख्या हैं।
- **न्यादर्श :** प्रस्तुत शोध हेतु अकोला शहर में से दो सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालय के कक्षा 5,6,7 का चयन किया गया। इसमें पढ़ने वाली बालिकाओं के माता एवं पिता का चयन किया गया जिसमें 40 माता अभिभावक तथा 40 पिता अभिभावक हैं उसमें 20 माता तथा 20 पिता साक्षर हैं तथा 20 माता एवं 20 पिता निरक्षर हैं। इस प्रकार असमानुपाती स्तरीकृत यादृच्छिक प्रविधि के द्वारा न्यादर्श का चयन किया गया।
- **शोध में प्रयुक्त चर :** प्रस्तुत शोध मे शहरी माता तथा पिता साक्षर एवं निरक्षर माता पिता संयुक्त एवं विभक्त परिवार के माता पिता एवं लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण आदि चरों को निर्धारित किया गया है।
- **प्रयुक्त उपकरण :** प्रस्तुत शोध कार्य में अभिभावकों के दृष्टिकोण पर आधारित अभिवृत्ति मापनी का निर्माण शोधकर्ता द्वारा किया गया एवं शिक्षाविदों से चर्चा करके तथा उसकी वैधता एवं विश्वसनीयता को देखकर प्रयोग मे लाया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

शहरी क्षेत्र के अभिभावकों (माता-पिता) का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (SD)	मुक्तांश (df)	प्रमाणिक त्रुटी (SEd)	क्रान्तिक अनुपात (CR)	सार्थकता स्तर
माता	40	143.25	5.95	78	1.68	0.59	सार्थक अंतर नहीं है
पिता	40	144.25	8.68				

शहरी क्षेत्र के साक्षर अभिभावकों (माता पिता) का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (SD)	मुक्तांश (df)	प्रमाणिक त्रुटी (SEd)	क्रान्तिक अनुपात (CR)	सार्थकता स्तर
माता	20	146.55	5.50	38	2.55	0.196	सार्थक अंतर नही है
पिता	20	147.05	9.68				

शहरी क्षेत्र के निरक्षर अभिभावकों (माता पिता) का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	प्रमाणिक विचलन (SD)	मुक्तांश (df)	प्रमाणिक त्रुटी (SEd)	क्रान्तिक अनुपात (CR)	सार्थकता स्तर
माता	20	139.95	5.90	38	1.996	0.75	सार्थक अंतर नहीं है
पिता	20	141.45	6.40				

निष्कर्ष

- शहरी क्षेत्र के माता एवं पिता अभिभावकों की लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई सार्थक अंतर नही है। दोनों को लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण ऊंचा है।
- शहरी क्षेत्र के निरक्षर माता एवं पिता अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण मे कोई सार्थक अंतर नही है।
- शहरी क्षेत्र के साक्षर माता एवं पिता अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण मे कोई सार्थक अंतर नही है।
- शहरी क्षेत्र की साक्षर एवं निरक्षर माता अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण मे सार्थक अंतर है। साक्षर माता अभिभावकों का दृष्टिकोण निरक्षर माता अभिभावकों की अपेक्षा अधिक है।
- शहरी क्षेत्र की साक्षर एवं निरक्षर पिता अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण मे सार्थक अंतर है। साक्षर पिता अभिभावकों का दृष्टिकोण निरक्षर पिता अभिभावकों की अपेक्षा अधिक है।

- भावी शोध हेतु सुझाव।
- ग्रामीण क्षेत्र के अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण।
- आदिवासी क्षेत्र के अभिभावकों का लड़कियों की शिक्षा के प्रति दुष्टिकोण।
- सरकारी स्कूलों में अध्ययनरत लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण।
- माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण।
- शिक्षक शिक्षा में अध्ययनरत लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण।
- लड़कियों की व्यवसायिक शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण।
- लड़कियों की उच्च शिक्षा के प्रति अभिभावकों का दृष्टिकोण।

संदर्भ

अदीब, एम.ए. (2003) माइग्रेशन एंड मल्टीकल्चलिज्म इन साउथ पंजाब, यूरिपोर्ट आफ नेशनल सेमिनार आन द स्टेट आफ माइग्रेशन एंड मल्टीकल्चरलिज्म

अख्तर एन., (2006) सोशियो-कल्चर बैकग्राउण्ड करैक्टरीस्टिक्स एंड एजुकेशनल अटैनमेंट आफ स्टूडेंट्स यूजर्नल आफ एजुकेशन रिसर्च

डेबोर्ड के.बी. एंड अटील्स टी.आर.डी. (1999) लेटिनो पेरैंट्स यूनिक प्रेफेरेंसेज फार लर्निंग अबाउट पेरेंटिंग

रिट्रिब्ड ऑन HThttp://www.ces.ncsu.edu/depts/fes/pub/1999/latino.htmlTH

डेसफोर्गेस, सी. एंड अबाउचार, ए. (2003) द इम्पैक्ट ऑफ पेरेंटल इन्वाल्वमेंट, पेरेंटल सपोर्ट एंड फैमिली एजुकेशन आन पीपुल अचीवमेंट एंड एडजसमेंट: ए लिट्रेचर रिब्यू, यूलंदन: डिपार्टमेंट फार एजुकेशन एंड स्किल्स।

फेन, एक्स. एंड चेन, एम (2001) पेरेन्टल इनवाल्वमेंट एंड स्टूडेंट एकेडमिक अचीवमेंट: ए मेटा-अनालिसिस एजुकेशनल साइकोलॉली रिव्यू

फ्लोरी, ई. एंड बुचनन, ए. (2004) अर्ली फादर्स एंड मदर्स इनवॉल्वमेंट एंड चाइल्ड लेटर एजुकेशनल आउटकम, ब्रिटिश जर्नल आफ एजुकेशनल साइकोलॉजी

महादेवन, यू. (1992), डिसक्रिमिनेशन अगेन्स्ट द फिमेल चाइल्ड - ए थ्रेट टू नेशनल डवलपमेंट एंड प्रोगेस

जैन्डर इश्यू इन एजुकेशन, एनसीईआरटी पोसेशन पेपर, नई दिल्ली

साहनी डी. (2007) इम्पोंटेन्स आफ एजुकेशन इन सोसायटी, कूकी इन्टरनेशनल फोरम, रिब्यू आन गूगल http//www.boloji.com/teens/articles/0037.htm

सर्फलीट, एफ. (2003), चिल्ड्रन इन होम एंड स्कूल, नई दिल्ली, सोनाली पब्लिकेशन्स

विल्शन, एल.एम. कॉर्पस, डी.ए. (सितम्बर 2001), द इफैक्ट आफ रिवार्ड सिस्टम ऑन एकेडमिक परफारमेंस, मिडिल स्कूल जर्नल।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता पर लिंग, परिवेश एवं वर्ग का अन्त:क्रियात्मक प्रभाव

कविता वर्मा और **पुष्पलता शर्मा***

प्रस्तावना

सामाजिक परिपक्वता आत्मकेन्द्रित शिशु से सामाजिक तौर पर भली भाँति परिचित और प्रवीण, प्रौढ़ बनने के विकास की प्रक्रिया है। बालक सर्वप्रथम अपने परिवार, समुदाय तथा समाज से अपने आपको सम्बद्ध करना सीखता है। प्रत्येक परिवार एवं संस्कृति की कुछ प्रत्याशाएं तथा संबंधों के विन्यास होते हैं जो अंततोगत्वा सामाजिक कौशलों, व्यवहारों और अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। सामाजिक संपर्क से वह सामाजिक परिस्थितियों एवं समाज के लोगों का प्रत्यक्षीकरण अधिक अच्छे ढंग से करने लग जाता है। वह सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करने लगता है। उसमें उत्तरदायित्व की पर्याप्त भावना आ जाती है तथा अपने हमउम्र एवं बड़े लोगों के साथ वह उन्हीं के स्वभाव, व्यवहार एवं उम्र के अनुरूप व्यवहार करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। यही वास्तव में उसकी सामाजिक परिपक्वता का द्योतक है। रेबर (1995) ने सामाजिक परिपक्वता को समाजीकरण की प्रक्रिया का एक अखंड भाग कहा है, जिसके द्वारा व्यक्तिगत ज्ञान, मूल्यों, भाषा की सुविधा, सामाजिक कौशल और सामाजिक संवेदनशीलता की प्राप्ति होती है जो उसे समाज के साथ एकीकृत करने तथा स्वीकार्य व्यवहार करने योग्य बनाती है।

परिपक्वता का स्तर किसी व्यक्ति विशेष की व्यवहार कुशलता एवं बुद्धि को उसकी उम्र की ओर इंगित करता है। परिपक्वता का लक्ष्य व्यक्ति और समाज, दोनों को संतुष्ट करना है, क्योंकि एक परिपक्व व्यक्ति एक ही समय पूर्ण एवं संतुष्ट व्यक्तिगत जीवन जी सकता है। सामाजिक रूप से परिपक्व विद्यार्थियों में स्वाधीनता, सामाजिक

* सहायक प्राध्यापक (शिक्षा संकाय), कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छत्तीसगढ़)

परिस्थितियों में सहज भाव से रहने की योग्यता तथा हम सब की भावना होती है। डॉ. नलिनी राव (1998) ने सामाजिक परिपक्वता की एक त्रि-आयामी एकीकृत अवधारणा का प्रादर्श प्रस्तुत किया है - इसमें सभी समाजों द्वारा एक व्यक्ति से अपेक्षित सामान्य व्यवहार की माँग को सम्मिलित किया गया है।

सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता एक व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह औसत वातावरण में स्वत: पर्याप्त रूप से कार्य कर सके, निर्णय ले सके, तनाव सहन कर सके तथा विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रह सके।

अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता उसकी क्षमता को बढ़ाती है ताकि वह संतोषजनक ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त कर सके। एक व्यक्ति संपर्क स्थापित करने में सक्षम है, वह दूसरों के साथ परस्पर निर्भरता स्थापित करता है, उस पर विश्वास करता है और समूह में सुव्यवस्थित सामंजस्य के साथ काम करता है।

सामाजिक पर्याप्तता उसे सामाजिक संपर्क के लिए योगदान देने हेतु क्षमता प्रदान करती है तथा विषम परिस्थिति में जीवित रखने में योगदान देती है। एक परिपक्व व्यक्ति व्यक्तिगत और सामाजिक-सांस्कृतिक भिन्नताओं को सहने में समर्थ होता है और सामाजिक पर्यावरण में होने वाले अनिवार्य परिवर्तनों को स्वीकार करने में समर्थ होता है।

बौद्धिक क्षमता से परे सामाजिक परिपक्वता जैसे तत्व बच्चे और विद्यालय के कार्यों को प्रभावित करने वाले निर्णायक तत्व हैं। एक व्यक्ति के लिए जीवन चक्र में यह व्यवहार आवश्यक है, चूँकि शालेय वर्षों में प्राय: सभी व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास होते हैं, अत: विद्यालय विद्यार्थी को सामाजिक रूप से परिपक्व बनाने में बहुत अधिक सहायता कर सकते हैं।

अस्थाना (1989), मुलिया (1991), दीवान (1998), जैन एवं शर्मा (2003), गिरि, जैन एवं लोधा (2006) तथा कल्याणी एवं चैतन्या एन. प्रतिमा (2008) ने सामाजिक परिपक्वता पर लिंग का प्रभाव नहीं पाया, किन्तु वोरा (1980), शर्मा एवं गिरि (2006) ने अपने अध्ययन में छात्रों को छात्राओं की अपेक्षा सामाजिक रूप से अधिक परिपक्व पाया। वहीं नलिनी राव (1978), स्वरूपा रानी तथा प्रभा (2008) ने लड़कियों को लड़कों से अधिक परिपक्व पाया।

जैन एवं मिश्रा (1998), कल्याणी देवी एवं चैतन्य एन. प्रतिमा (2008) ने सामाजिक परिपक्वता के दो आयामों अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता तथा सामाजिक पर्याप्तता में गैर जनजातियों को जनजातियों से सार्थक रूप से श्रेष्ठ पाया।

वोरा (1980) ने शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों को ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों से अधिक परिपक्व पाया।

अध्ययन की आवश्यकता

प्रत्येक समाज में सुव्यवस्थित समायोजन के लिए सामाजिक परिपक्वता अनिवार्य है। प्रजातांत्रिक समाज में मनोवैज्ञानिक समायोजन पर अधिक बल दिया जाता है। सामाजिक विकास की निरन्तर प्रक्रिया के द्वारा बालक में सामाजिक परिपक्वता उत्पन्न होती है। चूंकि बस्तर जिला छत्तीसगढ़ राज्य का जनजाति बहुल क्षेत्र है, जो आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से प्रदेश के अन्य जिलों से पिछड़ा हुआ है। आदिवासी समुदाय की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक विशेषताएं इस प्रकार की रही हैं कि उनके अस्तित्व एवं विकास के लिए संविधान निर्माता भी सजग रहे। जनजातियों के समग्र विकास के लिए भारत सरकार, राज्य सरकार एवं स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा विभिन्न योजनाएं क्रियान्वित की जाती रही हैं। प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक परिपक्वता पर किन कारकों का प्रभाव पड़ता है।

न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन हेतु बस्तर जिले के ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 11वीं के विद्यार्थियों को यादृच्छिक प्रतिदर्श द्वारा चयनित किया गया। ग्रामीण क्षेत्र के 400 विद्यार्थियों (अनुसूचित जनजाति के 200 विद्यार्थी, जिनमें से 100 छात्र एवं 100 छात्राएँ थीं तथा सामान्य श्रेणी के भी 200 विद्यार्थियों जिनमें से 100 छात्र एवं 100 छात्राएँ थीं) तथा शहरी क्षेत्र के विद्यालयों में अध्ययनरत 400 विद्यार्थियों (अनुसूचित जनजाति के 200 विद्यार्थी (100 छात्र एवं 100 छात्राएँ) तथा सामान्य श्रेणी के 200 विद्यार्थियों (100 छात्र एवं 100 छात्राएँ) का चयन किया गया।

उपकरण

विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता के मापन हेतु डॉ. नलिनी रॉव (1998 Revised

Version) द्वारा निर्मित 'सामाजिक प्रबुद्धता मापनी' उपकरण का प्रयोग किया गया।

अध्ययन के उद्देश्य

सामाजिक परिपक्वता पर लिंग, परिवेश तथा जाति के मुख्य एवं अन्त:क्रियात्मक प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना

उपरोक्त उद्देश्य पर आधारित निम्न परिकल्पनाएं निर्मित की गयीं–

H_1 'सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

H_2 'सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

H_3 'सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

H_4 'सामाजिक परिपक्वता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

निष्कर्ष एवं व्याख्या

H_1 'सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

तालिका क्रमांक 1(अ) से ज्ञात होता है कि –

- लिंग के लिये **F = 14.150 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। लिंग के माध्यों का अवलोकन (तालिका क्रमांक–1(ब)) करने से ज्ञात होता है कि छात्रों का माध्य 73.85 है जो कि छात्राओं के माध्य 71.89 से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- परिवेश के लिए **F = 26.168 (1/792), P<0.01** सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर परिवेश का सार्थक

तालिका - 1(अ)

सामाजिक परिपक्वता के आयाम-वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2x2x2 की Factorial Design का सारांश

स्रोत	वर्गों का योग	मुक्तांश	वर्ग का औसत	F का मान	सार्थकता
लिंग	756.605	1	756.605	14.150	.000*
परिवेश	1399.205	1	1399.205	26.168	.000*
जाति	8804.645	1	8804.645	164.665	.000*
लिंग x परिवेश	182.405	1	182.405	3.4111	.000*
लिंग x जाति	305.045	1	305.045	5.705	.067•
परिवेश x जाति	453.005	1	453.005	8.472	.017*
लिंग x परिवेश x जाति	508.805	1	508.805	9.516	.004*
त्रुटि	42348.280	792	53.470		.002*
योग		**799**			

*= 0.01 स्तर पर सार्थक • = NS (Not Significant)

प्रभाव पड़ता है। परिवेश के माध्यों (तालिका क्रमांक–1(स)) का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों का माध्य 74.2 ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों के माध्य 71.73 से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

- जाति के लिए **F = 164.665 (1/792), P<0.01** सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियों की जाति के माध्यों (तालिका क्रमांक–1(ब)) का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि सामान्य श्रेणी के विद्यार्थियों का माध्य 76.19 है, जो अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के माध्य 69.56 से अधिक सार्थक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- लिंग एवं परिवेश के बीच अन्त:क्रिया के **F** का मान **3.411 (1/792)** सार्थक नहीं है। अर्थात् लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
- लिंग एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया के **F = 5.705 (1/792) < 0.01** स्तर पर सार्थक है। अत: सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर जाति एवं लिंग के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। जाति एवं लिंग के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य को तालिका क्रमांक 1(ब) में दर्शाया गया है।
- परिवेश एवं जाति के माध्य अन्त:क्रिया **F = 8.472 (1/792) < 0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर परिवेश

तालिका – 1(ब)

जाति एवं लिंग के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति	लिंग		
	छात्र	छात्राएं	
अनुसूचित जनजाति	71.15	67.94	69.56
सामान्य श्रेणी	76.55	75.84	76.19
	73.85	71.89	

एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य को तालिका क्रमांक 1(स) में दर्शाया गया है।

- लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया **F = 9.516 (1/792)** है जो कि **P < 0.01** सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अर्थात् लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया का सामाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य को तालिका क्रमांक 1(द) में दर्शाया गया है–

तालिका-1(स)

परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति परिवेश ⟶	**अनुसूचित जनजाति**	**सामान्य श्रेणी**	
ग्रामीण परिवेश	68.99	74.47	71.73
शहरी परिवेश	70.13	78.27	74.2
	69.56	76.19	

- लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया के **F = 9.516 (1/792)** है जो कि **P<0.01** सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अर्थात् लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का समाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य को तालिका क्रमांक 1(द) में दर्शाया गया है–

तालिका - 1(द)

लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

लिंग ⟶	**छात्र**		**छात्राएं**	
परिवेश ⟶	**ग्रामीण**	**शहरी**	**ग्रामीण**	**शहरी**
जाति ↓				
अनुसूचित जनजाति	70.90	71.40	67.08	68.86
सामान्य श्रेणी	73.20	79.90	75.04	76.64

तालिका - 2(अ)

सामाजिक परिपक्वता के आयाम-अंतर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2x2x2 की Factorial Design का सारांश

स्रोत	वर्गों का योग	मुक्तांश	वर्ग का औसत	"F" का मान	सार्थकता
लिंग	536.281	1	536.281	13.303	.000*
परिवेश	546.151	1	546.151	13.548	.000*
जाति	9322.951	1	9322.951	231.262	.000*
लिंग x परिवेश	52.531	1	52.531	1.303	.000*
लिंग x जाति	360.461	1	360.461	8.941	.254•
परिवेश x जाति	270.281	1	270.281	6.705	.003*
लिंग x परिवेश x जाति	1386.011	1	1386.011	34.381	.010*
त्रुटि	31928.130	792	40.313		.000*
योग		**799**			

*= 0.01 स्तर पर सार्थक **= 0.05 स्तर पर सार्थक •= NS (सार्थक नहीं)

H_2 'सामाजिक परिपक्वता के आयाम – अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

- लिंग के लिए **F = 13.303 (1/792) P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग के माध्यों (तालिका क्रमांक 2(ब)) के अवलोकन से ज्ञात होता है कि छात्रों का मध्यमान 79.71 छात्राओं के मध्यमान 78.07 से अधिक है। अत: सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- परिवेश के लिए **F = 13.548 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक पर्याप्तता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश के माध्यों को देखने से ज्ञात होता है कि (तालिका 2(स)) की शहरी परिवेश के विद्यार्थियों का माध्य 79.72 ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों के माध्य 78.07 से अधिक है। अत: यह कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- जाति के लिए **F = 231.262 (1/792) P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियों की जाति के माध्यों (तालिका 2(ब)) के अवलोकन से विदित होता है कि सामान्य श्रेणी के विद्यार्थियों का माध्य 82.31, अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के माध्य 75.48 से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- लिंग एवं परिवेश के मध्य अन्त:क्रिया के **F = 1.303, (1/792),** जो कि सार्थक नहीं है। अर्थात् लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
- लिंग एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया के **F = 8.941 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर जाति एवं लिंग के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य तालिका 2(ब) में दर्शाया गया है।

तालिका - 2(ब)

लिंग एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति	लिंग		
	छात्र	छात्राएं	
अनुसूचित जनजाति	76.97	73.99	75.48
सामान्य श्रेणी	82.46	82.16	82.31
	79.71	78.07	

- परिवेश एवं जाति के माध्य अन्त:क्रिया **F = 6.705 (1/792) < 0.01** स्तर पर सार्थक है। अत: सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य तालिक 2(स) में दर्शाया गया है–

तालिका - 2(स)

परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

परिवेश जाति ⟶	ग्रामीण परिवेश	शहरी परिवेश	
अनुसूचित जनजाति	75.24	75.73	75.48
सामान्य श्रेणी	80.90	93.72	82.31
	78.07	79.72	

- लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया के **F = 34.381 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का सामाजिक परिपक्वता के आयाम अन्तर्वैयक्तिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य तालिका 2(द) में दर्शाया गया है -

H_3 : 'सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

तालिका - 2(द)

लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

लिंग →	छात्र		छात्राएं	
परिवेश →	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
जाति ↓				
अनुसूचित जनजाति	77.79	76.16	72.69	75.30
सामान्य श्रेणी	79.48	85.44	82.33	82.00

तालिका क्रमांक 3(अ) के अवलोकन से विदित होता है कि-

- लिंग के लिए **F = 2.021 (1/792)** है जो कि सार्थक नहीं है अर्थात् लिंग का सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।
- परिवेश के लिए **F = 46.380 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश के माध्यों के अवलोकन (तालिका 3(स)) से विदित होता है कि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों का माध्य 86.15 ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों के माध्य 82.71 से अधिक है। अत: सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- जाति के लिए **F = 15.029 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियों के जाति के माध्यों (तालिका 3(ब)) से ज्ञात होता है कि सामान्य श्रेणी के विद्यार्थियों का माध्य 87.52, अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों के माध्य 81.33 से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- लिंग एवं परिवेश के बीच अन्त:क्रिया के लिए **F = .059, (1/792)** है, जो सार्थक नहीं है। अर्थात् लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका - 3(अ)

समाजिक परिपक्वता के आयाम वैयक्तिक पर्याप्तता पर लिंग, परिवेश एवं जाति के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2x2x2 की Factorial Design का सारांश

स्रोत	वर्गों का योग	मुक्तांश	वर्ग का औसत	"F" का मान	सार्थकता
लिंग	102.961	1	102.961	2.021	.156*
परिवेश	2363.281	1	2363.281	46.380	.000*
जाति	7644.661	1	7644.661	150.029	.000*
लिंग x परिवेश	3.001	1	3.001	.059	.000*
लिंग x जाति	1106.851	1	1106.851	21.722	.808•
परिवेश x जाति	589.961	1	589.961	11.578	.000*
लिंग x परिवेश x जाति	457.531	1	457.531	8.979	.001*
त्रुटि	40355.97	792	50.955		.003*
योग		**799**			

*= 0.01 स्तर पर सार्थक **= 0.05 स्तर पर सार्थक • = NS (सार्थक नहीं)

- लिंग एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया **F = 21.722 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर जाति एवं लिंग के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया माध्य को तालिका 3(ब) में दर्शाया गया है।

तालिका - 3(ब)

लिंग एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति	लिंग		
	छात्र	छात्राएं	
अनुसूचित जनजाति	82.87	79.80	81.34
सामान्य श्रेणी	86.70	88.34	87.52
	84.78	84.07	

- परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया के लिए **F = 11.578 (1/792) P < 0.01** स्तर पर सार्थक है अर्थात् सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर परिवेश एवं जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य तालिका 3(स) में दर्शाया गया है -

तालिका - 3(स)

जाति एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति परिवेश ⟶	ग्रामीण परिवेश	शहरी परिवेश	
अनुसूचित जनजाति	80.48	82.20	81.35
सामान्य श्रेणी	84.94	90.10	87.52
	82.71	86.15	

- लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया के लिए **F = 8.979 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का सामाजिक परिपक्वता के आयाम सामाजिक पर्याप्तता पर सार्थक प्रभाव पड़ता

है। लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य निम्न तालिका में प्रदर्शित है –

तालिका – 3 (द)
लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

लिंग ⟶	छात्र		छात्राएँ	
परिवेश ⟶	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
जाति ↓				
अनुसूचित जनजाति	82.71	83.04	78.25	81.36
सामान्य श्रेणी	83.31	90.10	86.58	90.10

H_4 : 'सामाजिक परिपक्वता पर लिंग, परिवेश एवं जाति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।'

तालिका क्रमांक 4(अ) के अवलोकन से विदित होता है कि–

- लिंग के लिए **F = 8.805 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अत: सामाजिक परिपक्वता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग के माध्यों (तालिका 4(ब)) से ज्ञात होता है कि छात्रों का माध्य 238.16 छात्राओं के माध्य 234.66 से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता पर लिंग का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- परिवेश के लिए **F = 55.219 (1/792), P<0.01** सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश के माध्यों (तालिका 4(ब) से स्पष्ट होता है कि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों का मध यमान 240.80, ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों 232.03 से अधिक है। अत: सामाजिक परिपक्वता पर परिवेश का सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- जाति के लिए **F = 259.483 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् कुल सामाजिक परिपक्वता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है। जाति के माध्यों को (तालिका 4(स)) देखने से स्पष्ट होता है कि सामान्य श्रेणी के विद्यार्थियों का

तालिका - 4(अ)

सामाजिक परिपक्वता पर जाति, लिंग एवं परिवेश के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2x2x2 की Factorial Design का सारांश

स्रोत	वर्गों का योग	मुक्तांश	वर्ग का औसत	"F" का मान	सार्थकता
लिंग	2454.552	1	2454.552	8.805	.003*
परिवेश	15393.983	1	15393.983	55.219	.000*
जाति	72338.767	1	72338.767	259.483	.000*
लिंग x परिवेश	1179.280	1	1179.280	4.230	.000*
लिंग x जाति	6467.825	1	6467.825	23.200	.040**
परिवेश x जाति	4710.807	1	4710.807	16.898	.000*
लिंग x परिवेश x जाति	7437.731	1	7437.731	26.280	.000*
त्रुटि	220793.813	792	278.780		.000*
योग		**799**			

*= 0.01 स्तर पर सार्थक **= 0.05 स्तर पर सार्थक • = NS (सार्थक नहीं)

मध्यमान 245.92, अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के मध्यमान 226.91 से अधिक है। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक परिपक्वता पर जाति का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

- लिंग एवं परिवेश के मध्य अन्त:क्रिया **F = 4.230, (1/792) P<0.05** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता पर लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य निम्न तालिका में दर्शाया गया है –

तालिका - 4(ब)
लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का मध्यमान

परिवेश लिंग	छात्र	छात्राएँ	
ग्रामीण परिवेश	233.68	231.49	232.08
शहरी परिवेश	243.53	237.84	240.68
	238.6	234.66	

- लिंग एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया **F = 23.200 (1/792), P<0.01** सार्थकता स्तर पर सार्थक प्रभाव है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता लिंग एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। लिंग एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य को तालिका 4(स) में दर्शाया गया है।
- परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया **F = 16.898 (1/792), P< 0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता पर परिवेश एवं जाति के मध्य की

तालिका - 4(स)
लिंग एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति	लिंग		
	छात्र	छात्राएँ	
अनुसूचित जनजाति	231.50	222.31	226.91
सामान्य श्रेणी	244.83	247.02	245.92
	238.16	234.66	

अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया माध्य निम्न तालिका में प्रदर्शित है –

तालिका – 4(द)

जाति एवं परिवेश के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

जाति परिवेश	ग्रामीण परिवेश	शहरी परिवेश	
अनुसूचित जनजाति	224.95	228.87	226.91
सामान्य श्रेणी	239.11	252.74	245.92
	232.03	240.80	

- लिंग एवं परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया **F = 26.280 (1/792), P<0.01** स्तर पर सार्थक है। अर्थात् सामाजिक परिपक्वता पर लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव पड़ता है। जाति, लिंग एवं परिवेश के मध्य की अन्त: क्रिया का माध्य तालिका क्रमांक 4(इ) में दर्शाया गया है –

तालिका – 4(य)

लिंग, परिवेश एवं जाति के मध्य की अन्त:क्रिया का माध्य

लिंग →	छात्र		छात्राएँ	
परिवेश → / जाति ↓	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
अनुसूचित जनजाति	231.38	231.63	218.52	226.11
सामान्य श्रेणी	233.76	255.91	244.47	249.57

संदर्भ

अस्थाना, ए.(1989) : 'ए स्टडी ऑफ सोशल मैच्युरिटी अमंग स्कूल गोइंग चिल्ड्रन इन द सिटी ऑफ लखनऊ' फिफ्थ सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 1988–92(1)

कल्याणी देवी, टी. एंड चैतन्या एन. प्रतिमा (2008) : 'सोशल मैच्युरिटी ऑफ शेड्यूल ट्राइब्स एडोलसेन्ट्स' साइको लिंग्वा, 38(2), पेज 147–151

गैरिट, हेनरी ई. (1989) 'शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकीय के प्रयोग', कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना, ग्यारहवाँ संस्करण-1989

गिर, एस., जैन पी. एंड लोधा आर. (2006): 'सोशल मैच्युरिटी एंड लोकस ऑफ कंट्रोल ऑफ हाई एचीवर्स एंड लो एचीवर्स' - ए कम्परेटिव एनालिसिस, रिसेंट रिसर्च इन एजुकेशन एंड साइकोलॉजी, वाल्यूम II, नं. I-II, पृ. 7-10

जैन एम., शर्मा ए. (2003): 'एनाक्जाइटी एट द क्रास रोड्स एन अलार्म फार द डेवेलपमेंट ऑफ सोशल मैच्युरिटी ऑफ चिल्ड्रन' बिहेवियरल साइनटिस्ट, 4(2), 101-104

जैन एस. एंड मिश्रा पी. (1998) : 'इम्पैक्ट ऑफ सोशियालाइजेशन ऑन एकेडमिक एचीवमेन्ट ऑफ एडोलसेन्ट्स' सिक्स सर्वे ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, वाल्यूम II, पृ. 533, 1993-2000

दीवान, आर. (1998) : 'सोशियो इकॉनामिक स्टेट्स एंड सोशल मैच्युरिटी', द प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन, XXIII(5)

मुलिया, आर.डी. (1991), 'ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ सोशल मैच्युरिटी ऑफ हायर सेकेंडरी स्टूडेन्टस इन द कान्टेक्सट ऑफ देयर स्ट्रीम्स्, सेक्स एंड आईक्यू', जनरल ऑफ एजुकेशन एंड साइकोलॉजी, 48(3-4), 145-155

राव, नलिनी (1978) 'सोशियोलाइजेशन ऑफ चिल्ड्रन एंड यूथ' नेशनल साइकोलॉजीकल कारपोरेशन, 4/230, कचहरी घाट, आगरा, प्रथम संस्करण-1989

राव, एन. (1978) : 'ए स्टडी ऑफ सोशियो-साइकोलॉजीकल कोरिलेट्स ऑफ सोशल डेवेलपमेंट ऑफ हाई स्कूल चिल्ड्रन इन ग्रेड्स VIII, IX एंड X इन सम हाई स्कूल ऑफ बैंगलोर सिटी', पी-एच.डी. एजु. बैंगलोर, यू. 1978, थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पृष्ठ 401-402

राव, एन. (1998) 'सोशल मैच्युरिटी स्केल' RSM5 (हिन्दी) नेशनल साइकोलॉजिकल कारपोरेशन, 4/230, कचहरी घाट, आगरा।

वोरा, जे.आई.(1980) 'एन इनवेस्टिगेशन इन टू सोशल मैच्युरिटी ऑफ स्टुडेन्ट्स ऑफ कॉलेज्स ऑफ एजुकेशन इन द कॉनटेक्सट ऑफ सम साइको-सोशियो कोरिलेट्स' पी-एच.डी., एजु. एस.पी.यू. (1980), थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, पृष्ठ 854.

शर्मा, एस.एंड गिर, एस. (2006) : 'सेक्स डिफरेन्स इन सोशल मैच्युरिटी', साइको लिंग्वा, 36(1), पृ. 94-98

स्वरूपा रानी, जी. एंड प्रभा, आर. (2008) : 'सोशल मैच्युरिटी लेवल्स ऑफ एडोल्सेन्ट्स बिलांगिंग टू डिफरेन्ट पैरेन्टिंग स्टाईल' साइको लिंग्वा 38(2) पृष्ठ 185-188

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

भाषा का अवतरण और विकास

ओउम प्रकाश पाण्डेय*

''वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्,
ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु''

''एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्'' के द्वारा ऋग्वेद (6/4/29) सृष्टि के विलक्षण वैविध्य को एक ही तत्त्व विशेष का वैभव घोषित करते हैं। आखिर वह तत्व विशेष कौन सा है जो सृष्टि के विविधात्मक विलक्षणता का कारक हो सकता है तथा उसका आधर क्या है .. ? इन प्रश्नों के उत्तर हेतु उपर्युक्त ऋचा में उद्बोधित *'वि वभूव'* अर्थात वैविध्य की विलक्षणता के निहितार्थ को गहनता से समझना होगा। विलक्षणता यानि वि उपसर्ग से समन्वित लक्षणता का आशय विशिष्ट नैसर्गिक गुणों से होता है और गुण अथवा विशिष्टताएँ अमूर्त ज्ञान के ही क्रियात्मक आभास होते हैं जो प्रकारान्तर से जागतिक स्वरूपों का आधर बनते हैं। इस प्रकार विशिष्टताओं से ओत-प्रोत सृष्टि के इस विविधात्मक स्वरूप का कारक ज्ञान ही सिद्ध होता है। तैत्तिरीय उपनिषद् (2-1) तो स्पष्ट रूप से *'सत्य ज्ञानम् अनंत ब्रह्म'* के माध्यम से ज्ञान की एकमेव सत्ता की ही पुष्टि करता है। वस्तुतः ज्ञान ही वह प्रेरक तत्व है जिसके द्वारा अप्रमेय अखंड अपने को खंडात्मक स्वरूपों में अभिव्यक्त करता है। प्रकट रूप से भी यदि देखा जाय तो नाभकीय अम्लों व प्रोटीन मॉलीक्यूलों के अलभ्य संयोजनों से अस्तित्व में आए जैविक द्रव्यों में अवस्था परिवर्तन के साथ-साथ उत्तरोत्तर विकास की सभी सम्भावनाओं को समेटे रहने वाला अनुवांशिक कूट या फिर जड़ समझे जाने वाले परमकणों की प्रच्छन्न गणितीय संधियों से विकसित विशालतम् पिण्डों की अनंत श्रृंखलाओं वाले वक्र ब्रह्माण्ड की गुब्बारे सदृश्य अपसरणता और एक निश्चित अंतराल के पश्चात इसके सभी उपादानों का विशकलित होकर पुनः अपने मूल स्वरूप को प्राप्त होना ही नहीं अपितु इन्हीं प्रक्रियाओं को क्रमबद्ध तरीके से अनवरत दुहराते रहना, यह सभी कुछ एक परम नियोजित बौद्धिक आचरण का

* स्वतंत्र लेखक संपर्कः बी-361, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-110023
ईमेल-omppandey1953@gmail.com

एक विस्मयजनित साक्ष्य सदृश्य ही उभरता है। किंचित यही कारण है कि आधुनिक विज्ञान भी न्यूटन के यान्त्रिक विश्व के स्थूल पायदानों से उपर उठते हुए क्वाण्टम भौतिकी के उन्नत स्तरों पर पहुँच कर अब इसे बौद्धिक ही घोषित करने लगा है। 'द मिस्ट्रीयस यूनिवर्स' नामक अपनी अद्वितीय कृति में प्रसिद्ध भौतिकविद् सर जेम्स जींस ने यह उद्घाटित किया है कि विज्ञान के क्षेत्र में अब एक विस्तृत सहमति स्थापित हो गयी है कि यह विश्व एक बड़े यन्त्र के प्रकट स्वरूप के मूल में दिव्य विचारों के फैलाव की ही भांति प्रतिभाषित है।

सृष्टिगत बौद्धिकता का आशय प्रकृति में विद्यमान उस आन्तरिक चेतना से है, जो परिस्थिति अनुरूप अपने आप को स्वत: ही व्यवस्थित करती रहती है। चेतना का यह वैशिष्ट्य अमूर्तज्ञान के *'स्वगुणैर्निगूढ़म्'* संकल्प का ही प्रतिफलन है जो अपने मात्रात्मक आधार पर प्रस्फुरित प्राणिक ऊर्जा की क्रियात्मक गतिधर्मिताओं के प्रकारान्तर दृश्यादृश्य जगत के द्रव्यात्मक विविधाओं में प्रतिभाषित होने लगती हैं। ऐतरेय उपनिषद् (1–1, 1–2) में *'स ईक्षत् –– स प्राणम्सृजत –– स इमॉल्लोकान् सृजत'* के माधयम से सृष्टि प्रक्रिया संबंधित इन्हीं तथ्यों का उल्लेख हुआ है। वस्तुत: जड़ समझी जाने वाली सृष्टि ज्ञानजन्य सचेतन ईक्षण का ही परिणाम है, अतएव अपने सभी विविधात्मक स्वरूपों में वह उसी अनंत प्रज्ञा को ही प्रतिभाषित करती है। प्रसिद्ध भौतिकविद् आर्थर एडिग्टन भी अपनी चर्चित पुस्तक 'द नेचर ऑफ फिजीकल वर्ल्ड' में विश्व के सारभूत उपादानों को मानसिक करार देते हुए एक प्रकार से इन्हीं तथ्यों की ही पुष्टि करते प्रतीत होते हैं। इस तरह अद्वैत 'ज्ञान' की अभेद्यात्मक सत्ता ही चेतना की प्राणिक बोधगम्यता के स्तर पर 'ज्ञाता' तथा इसकी पदार्थगत गतिधर्मिताओं के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए वैश्विक प्रपंचों के विविधात्मक स्तरों पर 'ज्ञेय' के भेदात्मक द्वैत के माध्यम से मूलत: अपने आपको ही अभिव्यक्त करती है। ज्ञेय, ज्ञाता व ज्ञान का यह त्रित ही अपने विपरीत क्रम में ब्रह्म के सत्, चित् व आनंद या फिर वाक्, प्राण व मन स्वरूपी आत्मा के त्रयात्मकता (*स वा एष आत्मा वाङ्मय: प्राणमयो मनोमय:* – बृहद् आरण्यक उपनिषद्) का द्योतक है और यही क्रम ही वेद के)क्, यजुष् व साम नामक त्रयी विद्या (आधिभौतिक –वाक्/पिण्ड/घन, आधिदैविक–प्राण/ गति/तरल व अध्यात्मिक–मन/ओज/विरल) का भी आधार है। भौतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में इन्हें प्रकृति के तीन मूल बलों यानि गुरुत्वाकर्षण (नाभिक/पिण्ड केन्द्रित), विद्युत–चुम्बकीय (तेजोमण्डल/परिधि विस्तार) तथा प्रबल नाभिकीय (दोनों के मध्य उभयात्मक गति संतुलन) के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

वैश्विक धरातल पर मन व प्राण अपने आपको वाक् के माध्यम से ही प्रकट करते हैं। मन की इच्छा से प्राण के बल द्वारा वाक् में अमूर्त व मूर्त नामक दो विकार पैदा होते हैं। अमूर्त की प्रकृति चेतन व मूर्त की जड़ (भूत) होती है और यह अमूर्त ही मूर्त में व्याप्त होकर इन्हें गतिमान किए रहता है। इस प्रकार व्यावहारिक धरातल पर चेतना (मन/प्राण) के संश्लेषणात्मक तथा इसके मूर्त परिणामों के विश्लेषणात्मक बोध की दृष्टि से शुद्धतम ज्ञान के भी दो व्यक्तात्मक पक्ष उभर कर सामने आते हैं - बोधात्मक निरपेक्षता यानि प्रज्ञानपक्ष तथा विविधात्मक सापेक्षता यानि विज्ञानपक्ष (*प्रविष्ट ज्ञानं-प्रज्ञानम्, विविधं ज्ञानं-विज्ञानम्*)। अप्रमेय सत्ता के क्रियात्मक परिणामों से उद्भूत हुए सापेक्षात्मक विश्व के नानात्व के विषय मे जानने की प्रक्रिया ही जहाँ 'वि' उपसर्ग से समन्वित 'ज्ञान' यानि वि-ज्ञान (विविध या विशिष्ट ज्ञान) है, वहीं इस वैविध्य के नानात्व में अन्तर निहित सर्वव्यापी चैतन्यता के एकत्व (*आत्मवत् सर्वभूतेषु*) के सूत्रात्मक विराटत्व को अनुभूत करना ही 'प्र' उपसर्ग से समन्वित 'ज्ञान' का प्र-ज्ञान (*नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभाजन्य ज्ञान*) नामक व्यवहारिक पक्ष है। इस प्रकार प्रज्ञान की अपरिणामी एकमेवता अनुभूतिजन्य होने के कारण जहाँ दर्शनात्मक होती है, वही परिणामजनित क्रियात्मक प्रकल्पों से संबंधित होने के कारण विज्ञान का क्षेत्र आचरणात्मक होता है। चूँकि सृष्टि का विविधात्मक स्वरूप उसके परिणामजनित आचरणों द्वारा ही अस्तित्व में आता है, अत: उसका यह बहुआयामी वैविधय अपने नानात्व के परिप्रेक्ष्य मे विज्ञान की ही श्रेणी मे समयोजित होता है। वैदिक श्रुतियाँ तो सृष्टि की संरचना, स्थिति व लय को विज्ञानमय ही मानती रही हैं (*विज्ञानाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसविशन्तीति, विज्ञानमित्युपास्व*-तैत्तिरीय उपनिषद् - 3-5)। परिणामजनित भूतादिक प्रपंच अपने परिवर्तनशील प्रकृति के कारण नित नए कलेवरों में रूपान्तरित होते रहते हैं, अत: भारतीय अवधारणाओं में इनके परिणामित नश्वरता को मर्त्या तथा प्राकृतिक चेतना की अपरिणामी शाश्वतता को अमरत्व का द्योतक माना गया है। औपनिषद्क आख्यानों में प्रयुक्त विद्या-अविद्या, पर-अपर, अमृत-मृत्यु, श्रेय-प्रेय आदि का विशेषण अमूर्त की शाश्वतता तथा मूर्त की नश्वरता से ही अभिप्रेरित है।

इस विज्ञानमय सृष्टि का प्रत्येक कण व उनके आपसी संयोजनों से निर्मित बृहद् से बृहद्तम् पिण्डों की अनंत श्रृंखलाएँ एक अप्रतिम योजनान्तर्गत विविध आयामी गतिधर्मिताओं के साथ निरंतर ही गतिशील है। सृष्टि की इस लयवद्ध (गतिशीलता) के कारण अखिल ब्रह्मण्ड में अनवरत ही अलौकिक संगीत लहरियाँ भी झंकृत हो रही हैं।

साधारणत: अपने कर्ण–कुहरों की सीमित क्षमताओं के कारण मानव इन पराश्रव्य ध्वनियों को श्रवण करने मे असमर्थ होता है, किन्तु आधुनिक विज्ञान अपने अति उन्नत संकेतकों के माध्यम से विभिन्न प्रायिकताओं पर गुंजायमान हो रही आकाशगंगाओं की धवन्यात्मक संगीतों के कुछ अनस्फुट अनुगूँजों (कास्मिक फेड एक्स) को रिकार्ड करने में सफल हो चुका है (विज्ञान पत्रिका 'नेचर' के सितम्बर, 2004 अंक में प्रकाशित कॉस्मिक रिदम् की रिपोर्ट)। वस्तुत: इन धवन्यात्मक संगीत लहरियों का मूल स्रोत गहरे आकाश में व्याप्त अव्याकृत ध्वनियों (*वाग्वै पराची अव्याकृताक्वदन*–शतपथ ब्राह्मण, चतुर्थ काण्ड) से ही जुड़ा हुआ है। श्रुतियों में वर्णित अव्याकृत ध्वनियों का प्रस्फुटन नि:धवान् के उस मूल वाक्तत्व से होता है जो किसी भी प्रकार के घर्षण अथवा संसर्ग से सर्वथा अछूती रहने के कारण ध्वनि–रहित ही होती है। नि:ध्वान् की यह विशुद्धताएँ सिर्फ प्राणिक ऊर्जा के मूल तरंगों के आपसी अतिक्रमण की सीमाओं के पूर्व तक ही अक्षुण्ण बनी रह पाती हैं। प्राणिक ऊर्जा का तात्पर्य गत्यात्मकता के उन स्वत: स्फूर्त संचेतनाओं से है जिनके कारण सृष्टि का उद्‌भव, उसकी प्रकारान्तर संरचनाएं व इनके उत्तरोत्तर विकास की सभी आवश्यक प्रक्रियाएँ नियोजित होती रहती हैं। यह सर्वविदित है कि किसी भी तरह की गत्यात्मकता के लिए स्थिर आधार की अपरिहार्यता अनिवार्य होती है। अत: अमूर्त ज्ञान की निस्सीम निश्चलता के गर्भ में प्रसुप्त चेतना के संकल्पित उद्वेलनों से उत्सर्जित प्राणिक ऊर्जा की तरंगें ही अपनी आड़ी–तिरछी–लम्बवत् गतियों से सर्वत्र फैलती हुई (*तिरश्चीनों विततो रश्मि: एषाम् अध:*–नासदीय सूक्त, ऋग्वेद–10/129/5) सृष्टि की नित्य परिवर्तित विविधाओं में प्रतिभाषित होने लगती हैं। क्वाण्टम् (प्रमात्रक) भौतिकी की सुप्रसिद्ध आचार्या दानाह जोहार भी अपनी चर्चित शोधकृति 'द अल्टीमेट इन्टेलिजेंस' में कुछ इसी प्रकार के तथ्यों तक पहुँचने का ही प्रयास करती दिखती हैं। उनके अनुसार शाश्वत् चेतना के सर्वथा शान्त व स्थिर वैक्यूम पटल (Eternity Domain) से उत्सर्जित ऊर्जा के तीव्र सन्दोलनों द्वारा ही प्रकृति के सभी मूल बल व ब्रह्माण्ड के आधारभूत कणों–प्रतिकणों का अस्तित्व उभरता है। भौतिकी के सर्वकालिक आचार्य अल्वर्ट आइन्स्टीन का ऊर्जा–मात्रा संबंध में प्रतिपादित $E=MC^2$ का सूत्र भी ऊर्जा की गत्यात्मकता को ही मात्रा का कारक ठहराता है। आइन्स्टीन महोदय से शताब्दियों पूर्व हुए गुरु नानकदेव ने इस वैज्ञानिक रहस्योद्‌घाटन को 'एक नूर ते सब जग उपज्या' के सहज भाव में व्यक्त कर दिया था।

इस तरह निस्सीम निश्चलता के अन्त:स्थल से उत्सर्जित प्राणिक ऊर्जा की तरंगें अपनी आड़ी–तिरछी–लम्बवत् गतियों द्वारा एक दूसरे का अतिक्रमण करती हुई सर्वत्र ही

रश्मियों का एक सघनतम् जाल सा बुन डालती है। '*विश्वत: तन्तुभि: एकशतं देवकर्मभि: आयत:*' द्वारा ऋग्वेद (10/130/1) भी सृष्टि की इस दिव्य बुनावट को ही इंगित करता है। इन तरंगों के सतत् आवेग-प्रत्यावेगों के परिणामस्वरूप प्राणिक रश्मियों का यह अवर्चनीय जाल निरंतर प्रकम्पित भी होता रहता है। आवेग-प्रत्यावेगों के संकर्षण व प्रकम्पन की सतत् प्रक्रियाओं के चलते इस अलौकिक जाल से निरंतर ही अत्यंत अल्प घोष वाली अव्यक्त ध्वनियाँ भी झंकृत होती रहती हैं। इन अव्यक्त ध्वनियों के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए महर्षि दीर्घतमा औचथ्य यह स्पष्ट करते है कि तीन दिव्य बन्धनों (*त्रीणि दिवि बन्धनानि*-ऋग्वेद-1/163/3) अर्थात प्राणिक ऊर्जा की आड़ी-तिरछी लम्बवत् तरंगों के घर्षणों से आच्छादित वाणी (गौ: अभिवृता) का अत्यंत मन्द स्वर (शिङ्क्ते) लगभग मिमियाते (मिमाती) हुए ही गूँजता (मायुं) है (*अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाती मायुं*-ऋग्वेद-1/164/29)। यहाँ पर उल्लेखित 'मिमाती' और इसी से साम्यता रखने वाले-'मिमते, मिमाय' आदि वैदिक शब्दों का आशय अल्प प्राण वाले श्रोत अग्राह्य अति मन्द ध्वनियों से ही जहाँ संबंधित हैं, वही दिव्य तरंगों के आपसी अतिक्रमणों से स्फुलिंगित ज्योति के स्थूल स्वरूपों में प्रस्फुटित ध्वनियों के आद्य स्वरूप को वैदिक श्रुतियों में इसी के प्रतीकात्मक 'गौरी' अर्थात श्वेता या उज्ज्वला भी कहकर सम्बोधित किया गया है (*गौरीर्मिमाय सलिलानि-परमे व्योमन्*-ऋग्वेद-1/164/41)।

उपर्युक्त मंत्र में प्रयुक्त 'सलिल' का तात्पर्य बहाव या प्रवाह से ही है और इसी मंतव्य के अनुरूप ही ऋग्वेद (10/129/3) के नासदीय सूक्त में भी सृष्टि की प्रसव बेला (तमसा गूढ़म अग्रे) में सूक्ष्म रूप से (तुच्छयेन्) चहुँ ओर (सर्वम् इदम्) प्रस्सरित (सलिलं) हुई अव्यक्त अर्थात श्रोत अग्राह्य (अप्रकेतम्) ध्वनियों के निहितार्थ को '*तमसा गूढम् अग्रे अप्रकेतम् सलिलं सर्वमा इदम् तुच्छये*' द्वारा ही इंगित किया गया है। सृष्टि में सूत्रवत् व्याप्त प्राणिक ऊर्जा की तरंगें व इनके ज्योतिर्मय संकर्षणों से निरंतर गुँजायमान हो रही आद्य ध्वनियों की अति मन्द स्वर लहरियों के अविनाभाव संबंधों के दृष्टिगत् ही वेद मंत्रों के एक द्रष्टा ऋषि, वाक् के मूल स्वरूप को ऊर्जा (ऊर्जम्) के अमृत रूप में (पयांसि) सभी ओर से (चतस्त्र:) बरसते (दुदुहे) हुए अनुभूत करता देखता है (*यत् वाक् वदन्ती अविचेतनानि... मन्द्रा चतस्त्र: ऊर्जम् दुदुहे पयांसि*-ऋग्वेद-8/100/10)। प्राणिक रश्मियों के सूत्रात्मक जाल की सर्वव्यापी प्रकृति के कारण ही इनमें निविष्ट ध्वनियाँ सृष्टि में सर्वत्र प्रस्सरित होती रहती हैं, जिन्हें दूर संवेदी संकेतकों के उन्नत माध्यमों से प्रकाश तरंगों की विभिन्न प्रायिकताओं के आधार पर स्पष्ट रूप से सुना भी जा सकता है।

ज्योतिर्मय तरंगों का ध्वनियों में तथा ध्वनियों का ज्योतिर्मय तरंगों में रूपान्तरण की सूक्ष्म प्रक्रियाएँ सृष्टि में अनवरत चलती रहती हैं। ज्योति व ध्वनि के आपसी विनिमय की इस सनातन प्रवृत्ति (*शब्दज्योतिः सनातनम्*) के कारण ही भारतीय शास्त्रों में इनकी अभ्यर्थनाएँ ज्योति ब्रह्म व नाद ब्रह्म के रूप में भी की गई है। ज्योति व शब्द के परस्पर विनिमयों को रेडियो, टेलीविजन, दूरभाष, मोबाइल व इण्टरनेट आदि संचार माध्यमों के प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा सहजता से अनुभूत किया जा सकता है। इसी तरह ध्वनियों में निविष्ट ऊर्जा का भी अति उन्नत उपकरणों के माध्यम से दोहन कर वैकल्पिक संसाधनों का नया स्रोत विकसित किया जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान भी सृष्टि की जटीलतम गुत्थियों को सुलझाते हुए आणविक, परमाणविक, कणात्मक, परमकणात्मक विश्व के क्रम से अब अधिसूत्रात्मक जगत के सूक्ष्मतर स्तर पर भी पहुँचने का दावा करता दिखता है। विज्ञान की दृष्टि में आकाश का एब्सोल्यूट वैक्यूम (निर्वात स्थिति) अब मात्र शून्य नहीं बल्कि गणितीय गणनाओं के अति लघुतम स्वरूप वाले परम उद्भावक फेनिल द्रव्यों (Xylem) से ही भरा हुआ है। वैदिक श्रुतियों में आकाश की इस आपोमयं तरलता को अम्भस् के सार्थक द्धत्–तत्त्व से ही सम्बोधित किया गया है (*शर्मन् अम्भः .. गहनं गम्भीरम्*–ऋग्वेद–10/129/1)। चूँकि प्रकाश के वर्णक्रमों में अपने कमजोर तरंगदैर्घ्य के कारण नीला रंग जल के सूक्ष्म कणों द्वारा प्रत्यावर्तित हो जाता है, अतः परम व्योम में व्याप्त अम्भस् की पफेनिल सघनता के कारण ही रंगहीन आकाश हमें नीला दिखलाई पड़ता है। गहरी झीलों या पिफर अथाह जलराशि वाले सागरों के नीला दिखलाई पड़ने के पीछे भी यही कारण है। नभोविज्ञान की सर्वोत्कृष्ट शोधकृति में शुमार 'द कॉस्मिक कोड' के अनुसार आकाश के इसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म आद्य द्रव्यों की रासायनिक प्रक्रियाओं से ही कणों–प्रतिकणों की मूल इष्टिका वाले विविधात्मक संसार का अस्तित्व पनपता है। प्रख्यात नभोवैज्ञानिक नैमैन डॉयसन द्वारा प्रतिपादित विज्ञान के आधुनातन सिद्धांत आकाश के इस उद्भावक द्रव्य धर्मिता का कारक 10^{-33} से.मी. वाले अति महीन कॉस्मिक धागों को ही ठहराते है, जो सम्पूर्ण आकाश को ही अपने सघनतम जाल में आवेष्टित किए हुए है। इसी आधार पर 'थ्योरी ऑफ ऍवरीथिंग' के रूप में प्रतिष्ठापित कॉस्मिक धागों का यह नवीन अन्वेषण एक कोशिकाई सूक्ष्मदर्शीय जीव से लेकर आकाश जैसे अनंत आयामों तक को इन्हीं सूत्रों का ही प्रतिफलन ठहराते हैं। प्रोटॉन कण से भी एक अरबगुना महीन इन कॉस्मिक धागों के स्वतः स्फूर्त स्पन्दनों के कारण अनवरत ही इनमें से वायलिन सरीखी अति मद्धिम

ध्वनि-तरंगें भी प्रस्फुटित हो रही हैं। कॉस्मिक धागों के नैसर्गिक स्पन्दनों से प्रस्फुटित इन मूल ध्वनि-तरंगों का स्वरूप प्रतिगत्यात्मक अन्य प्रत्युत्पन्न तरंग दैर्घ्यों के संसर्गों से क्षेत्र विशेष की स्थिति अनुरूप परिवर्द्धित भी होता रहता है। इसी आशय के दृष्टिगत ऋग्वेद (1-164-41) का द्रष्टा ऋषि इन प्रतिस्पन्दनों से विभाजित हुई (तक्षति) मूल ध्वनियों के अनुगूँजों (गौरी: मिमाय) को एक, दो, चार, आठ, नौ के अनेक प्रकार के क्रम से (सहस्त्रक्षरा) व्योम में प्रतिध्वनित होते हुए ही अनुभूत करता है (*गौरीर्मिमाय तक्षत्येकपदी द्विपदी या चतुष्पदी, अष्टापदी नवपदी बभूवषी सहस्त्रक्षरा परमे व्योमन्*)। यही कारण है कि आकाश की बुनावट सदृश्य प्रतिभाषित इन धागों के स्पन्दनों से अनुशासित विभिन्न आकार-प्रकार की निहारिकाएँ भी अपने-अपने परिभ्रमण पथों पर अनोखी संगीत लहरियों के साथ गतिमान रहती हैं। कॉस्मिक स्ट्रिंग के इस रहस्योद्घाटन से सदियों पूर्व जन्में संत कवि कबीरदास भी अपने पेशेवर अंदाज में सूत की झीनी-झीनी ध्वनियों के धुन पर बुनें चादर (आकाश) में ही दिक् (पंचतत्व) व काल (आठों प्रहर) को समेटने के दार्शनिक रहस्यों द्वारा वैदिक मंतव्यों की गूढ़ता को ही उजागर करते दिखते हैं (आठ हाथ की बनी चदरिया/पाँच रंग पटिया पारी/चाँद सूरज जामें झालर लागे/जगमग ज्योत उजियारी/झीनी-झीनी रे बीनी चदरिया/झीनी-झीनी रे...)। कबीर के इस यथार्थवादी रूपक के अनुरूप ही विज्ञान की हिग्स फील्ड थ्योरी भी समूचे आकाश को वायलिन के मद्धिम धुनों से गुँजायमान फेन के अद्भुत गलीचे सदृश्य ही ठहराती है। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान भी अपनी पदार्थगत परिसीमाओं के उपरांत भी 'कास्मिक स्ट्रिंग' की पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से ऋषि-प्रज्ञा द्वारा उद्घाटित तथ्यों की ही एक प्रकार से नूतन व्याख्या करता दिखता है।

सृष्टि की इस बुद्धिवादी संरचना से संबंधित किसी भी तरह की बोधगम्य अनुभूति या अभिव्यक्ति निष्पन्नता का आधार अर्थजनित शब्द या इनके समुच्चय से बनी बोली अथवा भाषा ही होती है (*अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्व शब्देन भाषते*-भर्तृहरि कृत वाक्यपदीयम्) और इस अर्थजनित भाषा अथवा बोलियों का स्वरूप ध्वनि-वर्ण-पद-वाक्य के माध्यम से ही निरखता है (*ध्वनिवर्णा: पदं वाक्यमित्यास्पद चतुष्ट्यम्*-वाक्यपदीयम्)। इस प्रकार ध्वनि ही भाषा अथवा बोलियों की उद्गम बिन्दु है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल (163/1) में वर्णित '*यद्क्रन्द: प्रथमे जायमान:*' का सन्दर्भ जहाँ ध्वनि स्फोट की प्रथम घटना को सृष्टि के प्रसव के साथ ही जोड़ता है, वहीं नि:धवान् के क्रम से सर्वत्र व्याप्त हो गई अव्याकृत ध्वनियाँ ही अनंतर के व्याघातों से स्वर-वर्ण आदि श्रोतव्य पदों के इन चार

विभिन्न स्तरों से गुजरने के पश्चात् अर्थजनित भावों को प्रकट करने वाली भाषा अथवा बोलियों के रूप में प्रकट होने लगती हैं (*चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:*–ऋग्वेद–1/164/45)। चूँकि वैदिक विज्ञान का आधार मूलत: आधिभौतिक, आधिदैविक व अध्यात्मिक नामक त्रयी विद्या ही है, अत: इसी अनुरूप वाक् के चारों विवर्तों को भी वेद में तीन प्रकार से ही परिभाषित किया गया है। आधिभौतिक मंतव्यों में सत्य ज्ञान के मानसिक संकल्पों से उत्सर्जित प्राणिक ऊर्जा के बलों द्वारा वाक् में उत्पन्न अमूर्त नामक प्रथम विकार से प्रस्फुटित नि:धवान् के प्रथम स्तर को 'सत्या वाक्', तदन्तर परम व्योम अर्थात परम स्थाने तिष्ठति–परमेष्ठी (जिसे आधुनिक संदर्भो में आकाशगंगा की संज्ञा से चिन्हित किया जाता है) के अम्भस् स्वरूपों (फेनिल द्रव्यों) में सलिल सदृश्य व्याप्त अव्याकृत ध्वनियों को 'आम्भृणी वाक्', सौर मण्डल के मध्यरेखा (बृहती) पर स्थित ज्योतिर्मय सूर्य (सूर्य्यो *बृहतीमध्यूढस्तपति* – छान्दोग्य उपनिषद्) के रश्मि तरंगों के सम्पर्क से व्याकृत हुई स्वरात्मक ध्वनियों को 'बृहती वाक्' तथा इनके पुन: पृथ्वी आदि ग्रहों के परिभ्रमण गतियों से व्याघात होने पर प्रतिध्वनियों के रूप में निष्पन्न व्यजंनात्मक वर्णों को 'अनुष्टुप वाक्' कहा गया है। इसी तरह आधिदैविक सन्दर्भो इन्हें ही क्रमश अमूर्त के अमृत स्वरूप के अनुरूप 'अमृता', प्राणिक तरंगों के आपसी अतिक्रमणों से स्फुलिंगित उद्भवों के कारण 'दिव्या', सूर्य–रश्मियों में स्थित ऐन्द्र प्राणों के प्रभाव से ध्वनित स्वरात्मक वाक् को 'ऐन्द्री' व पृथ्वी आदि ग्रहों के मर्त्य भावों के तहत तत् प्रतिध्वनित व्यंजनात्मक वाक् को 'मर्त्या' कहा गया है। आध्यात्मिक संस्था में उपस्थित वाक् के इन चारों स्वरूपों को इनके यथास्थिति अनुरूप अर्थात मन के विशुद्ध प्रज्ञाभाव से संबंधित वाक् को 'परा', अनुभूति जन्य मानसिक उद्गारों को 'पश्यन्ती', श्वासात्मिका उपांशुवाक् को 'मध्यमा' तथा *दूरतोक्तपि श्रोतग्राह्य* नादात्मिका वाक् को 'बैखरी' के रूप में चिह्नित किया जाता है। किंचित इन्हीं आशयों के आलोक में ही यह कहा भी गया है कि – '*बैखरी शब्द निष्पर्त्तिमध्यमा श्रुतिगोचरा, द्योतितार्थनुपश्यन्ती सूक्ष्मवागनपायिनी*'।

इस तरह स्फोट, ध्वनि, स्वर व वर्ण (व्यंजन) के चार भागों में विभाजित हुई वाक् (चत्वारि वाक्) के अर्थ संभाव्य स्वरूपों का प्राक्ट्य उत्तरार्ध पक्ष वाले बृहती तथा अनुष्टुप के स्तरों पर ही सम्भव हो पाता है। सौर मण्डल के विष्वद् रेखा (बृहती) पर स्थित सूर्य की रश्मियों से छन्दित स्वरात्मक ध्वनियों को बृहती छंद तथा अनुष्टुप रेखा पर गतिमान पृथ्वी आदि ग्रहों के व्याघातों से छन्दित वर्णात्मक प्रतिध्वनियों को अनुष्टुप छंद के रूप में चिन्हित किया गया है। चूँकि किसी भी वृत्तात्मक क्षेत्र की सबसे बड़ी परिधि

का निर्धारण उसके मध्य रेखा के आयतन से ही सुनिश्चित किया जा सकता है, अत: वृहती के इसी सिद्धांत के अनुरूप सौर मण्डल के मध्य रेखा पर स्थित सूर्य के छंद को भी अंक विद्या की सबसे बड़ी इकाई अर्थात पूर्णांक के ही प्रतीकात्मक नवाक्षर या नौ विन्द्वात्मक तथा वृहती रेखा से आठ अंश नीचे की ओर प्रतिष्ठित अनुष्टुप रेखा पर गतिमान पृथ्वी आदि ग्रहों के छंद को अष्टाक्षर या अष्टविन्द्वात्मिका ही माना गया है। इन्हीं नवाक्षर छंदों के कारण आरोग, भ्राज, स्वर्ण, पतंग, पटर, ज्योतिष्मान, विभास, हिरण्यजिह्व तथा हिरण्यपाणि (*आरोगो भ्राज: स्वर्णरो पतंङ्ग: पटर: ज्योतिषीमान्, विभास: हिरण्यजिह्वस् हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये*-तैत्तिरीय संहिता-1.7) आदि नौ ऐन्द्र प्राणों में निविष्ट ऊर्जा वैशिष्ट्यों के अनुरूप सूर्य की रश्मियों का रंग क्रमश: लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, जामुनी, बैगनी, पैराबैगनी व रक्तिम् लाल के नौ स्तरों में बँट जाता है, जबकि अष्टाक्षर छंद के परिणामस्वरूप ध्रुव, धर, सोम, आप:, वायु, अग्नि, प्रत्युष व प्रभाष नामक आठ वसु प्राणों के श्रमित कारणों (स श्रान्तस्तेपान:) से वसुधा (*दुहिता वसूनां* यानी पृथ्वी) अपने को फेन, मृद (कीचड़), शुष्क (सूखी परत), पयुष (ऊसर), सिकता (रेत), शर्करा (कंकड़), अश्मा (पत्थर) व अय: हिरण्यम् (लौह-स्वर्ण आदि धातुओं) के आठ स्वरूपों में व्यक्त करते हुए ऐश्वर्यदायिनी बनती है (*स श्रान्तस्तेपान: फेनम् सृजत स मृदं शुष्का पयूष सिक्तं शर्कराम् अश्मानाम् अयो हिरण्यम्... तेनेमां पृथिवी प्राच्छादयत्* - शतपथ ब्राह्मण-6/1/11/13-14)। पाश्चात्य जगत के समक्ष न्यूटन ने सन् 1672 में सर्वप्रथम काँच के प्रिज्म से सूर्य-किरणों को विभाजित कर (VIBGYOR) का सप्त वर्णक्रम समझाया था, जबकि पृथ्वी के दोनों पार्श्वों से गुजरने वाले अल्ट्रा वॉयलेट (पैरा बैगनी) व इन्फरारेड (रक्तिम् लाल) विकिरणों का रहस्य आस्ट्रिया के भौतिकविद् विक्टर हेस ने सन् 1912 में उजागर किया और इन्हें इसके लिए सन् 1936 में नोबेल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। इसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के आणविक सिद्धान्त के अनुसार परमाणुओं की विरल (वायव्य) अवस्था से कणों के ठोस स्वरूपों में रूपान्तरित होने की रासायनिक प्रक्रिया भी आठ प्रकार के परमाणवीय बन्धों के आधार पर ही निष्पन्न हो पाती है और कणों का यह ठोस गट्ट ही अपने मात्रात्मक आधार पर कालान्तर में छोटे-बड़े पिण्डों के क्रम से पृथ्वी जैसे विशाल पिण्डों में परवर्तित हो जाते हैं। उपर्युक्त वर्णित नवाष्टक सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक विज्ञान की इन खोजों से सहस्त्राब्दियों पूर्व भारतीयों को आरोगादि-विभासान्त पर्यन्त की लाभकारी सप्त रश्मियों के अलावा अनिष्टकारी हिरण्यजिह्वा व हिरण्यपाणि नामक दोनों विकिरणों के साथ

अष्ट रासायनिक बन्धों की सूक्ष्म प्रक्रियाओं द्वारा ठोस पिण्डों के स्वरूप निर्धारण की भी क्रमिक जानकारी वैदिक काल में ही हो चुकी थी।

इस तरह परमेष्ठी मण्डल में प्रसरित आम्भृणी वाक् की अव्याकृत ध्वनियाँ ही सूर्य मण्डल के चारों ओर तरंगवत निसृत हो रही नौ रश्मियों के चपेट में व्याकृत हो नवाक्षर (तक्षति नवपदी) के चार (*चतुष्टयं वा इदं सर्वम्* – कौषि. ब्राह्मण – 2/1) आधार पर छत्तीस स्वरात्मक ध्वनियों के बृहती छंद या ऐन्द्री वाक् के रूप में प्रस्फुटित हो पड़ती है। इन्हीं स्वरात्मक ध्वनियों को प्रस्फुटित करने के कारण बृहती छंद के मध्य में स्थित ज्योर्तिमय पिण्ड को '*स्वरहर्देवा: सूर्य्य:* (शतपथ ब्राह्मण–1/1/2/2/1) की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। आधुनिक विज्ञान भी सूर्य के हाइड्रोजन व हीलियम गैसों में होने वाले आणविक संघातों से गुँजायमान ध्वनि को भारतीय वर्णमाला के 'ऋ' स्वर के सदृश्य ही ठहराता है। भारतीय वर्णाक्षरों में ऋ अथवा र कार को मूलत: अग्नि तत्व का ही सूचक माना गया है और इसी के प्रमाणस्वरूप ऋगाग्नि की उक्ति से प्रतिष्ठित ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का प्रारम्भ भी तदानुरूप '*अग्निमीक्ते पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्*' के मंत्र से ही हुआ है। इस प्रकार 'ऋ–ऋ' की यह ध्वनियाँ हीलियम की ज्वाला से देदीप्यमान हो रहे सूर्य के अग्नि तत्त्व को ही उच्चरित करते प्रतीत होते हैं। इधर पृथ्वी सहित सौर मण्डल के अन्यान्य ग्रहगण भी अपने अण्डाकार परिभ्रमण पथ पर सदैव ही सूर्य के एक ही ओर उन्मुख रहते हैं, अतएव इस स्थिति विशेष के कारण बृहती के मात्र नवाक्षर छंदों की तरंगें ही प्रतिक्षण अनुष्टुपगत पृथ्वी व अन्यान्य ग्रहों के अष्टाक्षर छंदों का भेदन करती रहती हैं (*अनुष्टुभम् अनु चर्चूर्यमाणम् इन्द्रम् निचिक्यु: कवय: मनीषा*–ऋग्वेद–10/24/9)। इस नवाष्टक प्रभाव से होने वाले गुणनपफल के परिणामस्वरूप बृहती की स्वरात्मक ध्वनियों से व्युत्पन्न प्रतिध्वनियाँ ही अन्तत: बहत्तर व्यजंनात्मक अनुष्टुप अथवा मर्त्या वाक् के रूप में प्रस्फुटित हो उठती हैं। उपर्युक्त आधार पर ही ऐत्तरेय आरण्यक (2/3/6) – '*अकारो वै सर्वा वाक् सैषा स्पर्शोष्यमि व्यज्यमाना वही नाना रूपं भवति*' के मंतव्यों द्वारा अकार आदि स्वर समूहों को व्यंजनात्मक वर्णों का आधार ठहराता है। आधुनिक भौतिकविद् भी अति उन्नत संकेतकों के माध्यम से रिकार्ड किए गए पृथ्वी की बलयाकार परिक्रमा से उत्पन्न ध्वनियों की गूँज को भारतीय वर्णमाला के गं, घं, ठं, क्षं आदि घोषों के अनुरूप ही पाते हैं। इन्ही छत्तीस स्वरात्मक व बहत्तर व्यजंनात्मक ध्वनियों के योग से ही खगोल की एक सौ आठ धवन्यात्मक वर्णमाला का स्वरूप उभरता है। यह सर्वविदित है कि भारतीय वर्णमाला के अनुसार स्वरात्मक अक्षरों

का प्रारम्भ 'अ' से होता है, जबकि तंत्र शास्त्र के अनुसार व्यंजनात्मक अक्षरों का फैलाव 'क' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त ही है। यही कारण है कि स्वरात्मक छंद वाले सूर्य तथा अपने आन्तरिक गुरूत्वाकर्षणों के आपसी समन्वय के आधार पर टिकी व्यंजनात्मक छंद वाली पृथ्वी की धुरी को इसी आशय के अनुरूप ही स्वर के प्रथम तथा व्यंजन के अन्तिम अक्षर के योग से बने 'अक्ष' की सार्थक संज्ञा से तथा अनुष्टुप के व्यंजनात्मक छंदो में भ्रमण करने के कारण पृथ्वी के बलयाकार पथ को व्यंजन के प्रथम व अन्तिम अक्षर के संयोग से निरूपित 'कक्ष' के प्रामाणिक उद्‌बोधनों द्वारा ही सम्बोधित किया गया है।

इस प्रकार वाक् के अमूर्त विकार के रूप में प्रस्फुटित हुई सत्या आदि ध्वनियों के प्रामाणिक क्रमों की ही भांति आकाश व उसके फेनिल द्रव्यधर्मिताओं से प्रसूत हुए भौतिक जगत के सभी प्रपंचों के क्रम विकास को भी भारतीय मनीषाओं ने ध्वनियों का ही मूर्त-विकार प्रमाणित किया है। उनके अनुसार दिव्य ध्वनियों के प्रसरण के लिए अवकाश की आवश्यकता ही आकाश की कारक बनी, फिर प्रसरण की क्रियाओं से गति (वायु), इस गति के वेग से ऊष्मा (अग्नि), इन उष्माओं में हुए क्षोभ से अपतत्व व फिर गति व उष्माओं के निरंतर प्रभावों से यह अतत्व फेन आदि के क्रम से ठोस (पृथ्वी आदि) पदार्थो में परिवर्तित हो गए (*तस्माद्वा एतस्यादात्मन् आकाशः सम्भूतः, आकाशद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अदम्यः पृथिवी*-तैत्तिरीय उपनिषद्, ब्र.बल्ली-1 अनुवाक)। ध्वनि-स्रोत के उपर्युक्त आधार के दृष्टिगत यदि '*छिति जल पावक गगन समीरा*' की व्यवहारिक परीक्षा भी की जाय तो ठोस पदार्थो के आपसी टकराहट से उत्पन्न होने वाले धप्प-धप्प, ठप्प-ठप्प आदि शब्द, जल के प्रवाह से निकलने वाली कल-कल व प्रज्जवलित अग्नि शिखाओं से उत्पन्न धू-धू, धक्-धक् की ध्वनियाँ, वायु के प्रसरण की सनसनाहट तथा आकाश में गुँजायामान विविध प्रतिध्वनियाँ आदि यही सिद्ध करती हैं कि पंचभूतों व इनके आपसी समिश्रणों से अस्तित्व में आए भौतिक जगत के सभी उपादान वाङ्मय ही हैं। सम्भवतः इन्हीं तथ्यों के आधार पर ही श्रुतियाँ '*अथो वागवेदं सर्वम्*' (ऐत्तरेय आरण्यक-3/1/6) तथा '*वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता*' (तैत्तिरीय ब्राह्मण -2/8/84) की सारगर्भित उक्तियों के द्वारा वाक् को ही विश्व का आधार घोषित करती हैं। क्वाण्टम भौतिकी के सुप्रसिद्ध आचार्य डा. बोम भी अपनी चर्चित पुस्तक 'होलनेस एण्ड द इम्पलीकेट आर्डर' में एक प्रकार से इन्हीं तथ्यों की वैज्ञानिक पुष्टि करते दिखते हैं। उनके अनुसार - *'प्रकृति में कहीं कुछ ऐसा नहीं है जो अपने आभ्यंतर स्वरूप को बाहर न प्रकट करता हो ... प्रत्येक वस्तु के पास अभिव्यक्ति के लिए अपना स्वाभाविक*

मुख भी है और ध्वनियाँ भी ... यही प्रकृति की भाषा भी है जिसके माध्यम से इसके सभी उपादान स्वत: ही अपने गुणधर्मों को प्रकट करते रहते हैं।' इन प्रामाणिक दृष्टांतों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊर्जा की ही भांति ध्वनि की भी व्याप्ति प्रकृति में सर्वत्र है। वस्तुत: अमूर्त ज्ञान के निश्चल गर्भ से उत्सर्जित प्राणिक ऊर्जा के आपसी संकर्षणों से उत्पन्न उष्माओं के क्षोभ से ही वाक् की मूल प्रकृति द्रुत होकर अम्भस् के अपतत्व में परिणित हो)त् भावानुरूप सर्वत्र व्याप्त हो जाती है (*ऋतमेव परमेष्ठी ऋतं नात्यति किंचन*–तैत्तिरीय ब्राह्मण–1/5/5/1)। परम व्योम में व्याप्त आपोमय ऋत्–तत्व के सौम्य गुणों के कारण ही भारतीय वाङ्मय में इसे रसमय सोम के अलंकारिक नाम से भी चिह्नित किया गया है (*अथ यत् किंचिंत आर्द्रम् तद्रेतसोऽसृजत् तदु सोम* – बृहदारण्यक उपनिषद् – 1/4/6)। इस स–रसवान सोम के स्नेहिल आकर्षणों के संसर्ग में आकार ही नि:धवान् के अव्यक्त भाव धवन्यात्मक वाग् के अति मद्धिम स्वरूपों में व्यक्त हो सर्वत्र गुँजायमान होने लगते हैं। वैदिक श्रुतियों में धवन्यात्मक वाग् की इसी स्थिति को 'मिमाती मायु' की विशिष्टताओं से चिह्नित किया गया है। प्रकारान्तर में यही वाग्, वर्षा की भांति श्रत् हो रहे सरस सोम से अपनी संलिप्ताओं के आधार पर सौर–मण्डल में प्रविष्ट होकर स्वरात्मक छंदों के नाना रूपों में मुखरित होने लगते हैं (*अभिपत: बृष्टिभि: तर्पयन्तम् सरस्वन्तम् अवसे जोहवीमि*–ऋग्वेद– 1/164/52)। यही नहीं बल्कि परमेष्ठी मण्डल (आकाशगंगा) से निर्बाध रूप से श्रत हो रहे इस आन्तरिक्ष्य (दिक्) सोम की आद्रता में निविष्ट उर्वरा तत्त्वों के आधार से ही पृथ्वी पर अन्य उपलब्ध अनुकूल परिस्थितियों के सहयोग से वनस्पतियों (शैवाल आदि) के क्रम से जैविक प्राणियों का अस्तित्व भी उभरता है। आधुनिक विज्ञान के शोधों से भी इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि अन्तरिक्ष से जैविक द्रव्यों का पृथ्वी के वायुमण्डल में सतत् प्रवेश हो रहा है। 'पेनस्पर्मिया' (बीज की सर्वव्यापकता) थ्योरी के जन्मदाता के रूप में विख्यात भौतिकविद् जी. अरहेनियस, 'इवाल्यूसॅन प्रफॉम स्पेस' के रचयिता प्रफैड हॉयल व चंद्र विक्रमसिंघे तथा नेशनल सेंटर फॉर बेसिक साइंसेज, कोलकाता के वैज्ञानिक संदीप चक्रवर्ती व सोनाली चक्रवर्ती के शोधों के अनुसार तारों व ग्रहों की उत्पत्ति से भी पहले अंतरिक्ष में हाइड्रोजन, कार्बन, आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि तत्वों के अणुओं से युक्त विशाल बादलों (नेब्युला) का अस्तित्व मौजूद है। इन बादलों में ताप नाभिकीय दबावों के कारण हुए विकिरणों से थ्रेओस–डीऑक्सी–राइबो नामक नाभिकीय अम्लों व उसके महत्वपूर्ण अव्यय के रूप में चिद्रित किए गए एडवेनिन, एलेनिन, ग्लीसाइन आदि उच्च गुणवत्ता

वाले रासायनिक अम्ल अस्तित्व में आए। इन वैज्ञानिकों के अनुसार प्राणी-संरचना के लिए आवश्यक तत्वों से परिपूर्ण फार्मएल्डिहाइड नामक अंतरिक्ष के इन बादलों के रासायनिक अम्ल जब सौर ऊर्जाओं के प्रभाव से समीपस्थ ग्रह के चुंबकीय कवच को भेदकर उसके वायुमंडल में प्रवेश कर जाते हैं, तब उस ग्रह-विशेष की अनुकूल परिस्थितियों (भूमि, जल व वायु) के संसर्ग में ये अम्ल कार्बनिक तत्वों में परिवर्तित होकर विभिन्न प्रकार के प्रोटीनों को योजित करने लगते हैं और यही प्रकारान्तर से वनस्पतियों व बैक्टीरियाओं के रूप में पनप जाते हैं। नासा के गोडार्ड स्पेस सेन्टर के वैज्ञानिक डॉ. डेनियल ग्लेविन व डॉ. जेसन डोर्किन ने भी दस वर्षों के अथक परिश्रम के उपरांत मार्च, 2009 में जारी अपने शोध निष्कर्षों में नाभिकीय जल-परिवर्तित उल्कापिंडों में आइसोवेलीन एमिनो एसिड नामक जैव उद्भावक द्रव्यों की बहुतायत मात्रा में मौजूदगी को स्वीकार करके इन्हीं तथ्यों की ही प्रामाणिक पुष्टि की है।

आन्तरिक्ष्य सोम की इस उद्भावक आद्रता को चूँकि सूर्य रश्मियों में उपस्थित ऐन्द्र प्राण की उष्माएँ सोख लिया करती हैं, अतः रात्रिकाल में उदित चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना को इन तत्वों को अनुकूल मानते हुए ही भारतीय शास्त्रों में चन्द्र को 'भास्वर सोम' की उपाधि से विभूषित कर इसे भी वनस्पतियों तथा तद्-उत्पन्न प्रभावों का कारक मान लिया गया। पौराणिक आख्यानों में इन्द्र का सोम पान करना या फिर चन्द्रमा से ऊपर के हिस्से को पितर लोक के रूप में चिद्रित करना आदि का आशय इन्हीं मंतव्यों से ही अभिप्रेरित है। भोज्य पदार्थों के रूप में उपलब्ध यह वनस्पतियाँ ही चयापचय की शारीरिक प्रक्रियाओं द्वारा पुरुषों में रस, असृक (रक्त), मांस, मेद, अस्थि, मज्जा व रेत् (शुक्र) की सप्त घन अवस्थाओं में रूपान्तरित होकर जहाँ देह के पार्थिव स्वरूप को पुष्टता प्रदान करती हैं, वहीं संयम के उर्ध्वरेतस् प्रयासों द्वारा इनमें निहित आन्तरिक्ष्य उर्क के तरल प्रभावों से ओज के आठवें स्तर के क्रम से अन्ततः अपने नौवें सारवत्ता की परिष्कृत स्थिति में शेष बचे विरल सोम की विशुद्धताओं के आधार पर मन की उत्कृष्टता को निखारती भी हैं। इधर प्रकृतवत् सौम्य प्रवृत्ति के कारण स्त्रियों में देहयष्टि की पुष्टता के लिए आवश्यक न्यूनतम मात्रा से अधिक संचित हुए विजातीय अग्नि-तत्व (असृक) ऋतु-चक्रों के द्वारा जहाँ इनके शरीर से नियमित अन्तरालों पर वर्हिगत होते रहते हैं, वहीं सप्तम स्तर की सजातीय धातु प्रकारान्तर से आभा व फिर सोम के विशुद्ध रूपों में परिष्कृत होकर इनके रूप लावण्य व मानसिक स्निग्धता को ही द्विगुणित करती रहती है। यही कारण हैं कि स्त्रियाँ अपनी मानसिक समृद्धता के कारण जहाँ अति संवेदनशील होने

के साथ मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों व चारों खंडों या लोब का एक ही साथ उपयोग करने में सक्षम होती हैं, वहीं शारीरिक पुष्टता की दृष्टि से इनमें हेमोग्लोबिन का स्तर पुरुषों की अपेक्षा कम ही रहता है। इस प्रकार चयापचय की शारीरिक प्रक्रियाओं द्वारा आन्तरिक्ष्य सोम के प्रभावों से उत्पन्न पार्थिव अन्नों की अन्तिम परिणति के रूप में निसृत अमृतमय तत्वों के आधार पर ही मन की स्नेहिल प्रवृत्ति निखरती है, जो प्रकारान्तर से इसके वैचारिक ग्राह्यता की क्षमता को ही प्रखर कर देती है। '*अन्नमयं हि सौम्य मनः*' आदि के उदाहरणों तथा 'जैसा खाओगे अन्न, वैसा ही बनेगा मन' की कहावतों का भी यही निहितार्थ है। छान्दोग्य उपनिषद् (7/26) भी अपने-'*आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः*' के अमूल्य उपदेश के माध्यम से कुशाग्र बुद्धि के अर्जन हेतु संयम-नियम से ग्रहण किए जाने वाले सात्विक आहार की उपयोगिता पर ही बल देता है। भारतीय शास्त्रों ने गोदुग्ध, नारियल तथा पार्थिव अन्न में चावल व जौ को सोम का सबसे उत्कृष्ट स्रोत माना है, जबकि मेडीकल साइंस भी गोदुग्ध व चावल के ऊपरी परत में पाए जाने वाले पीले पदार्थ तथा नारियल में पोटेशियम की अधिकता को मेड्यूला (मस्तिष्क स्थित स्मृति-तंत्र) की क्षमता या फिर मेधा की प्रखरता के लिए उपयोगी ही पाया है।

इस प्रकार वैदिक श्रुतियों में सरस्वान के द्रवित स्वरूपों में श्रत् हो रहे धवन्यात्मक वाग् व सोम के ज्ञान-सुधा वाले वैशिष्ट्य की अधिष्ठात्री दिव्यता को जहाँ 'सरस्वती' के समीचीन उद्बोधन से ही सम्बोधित किया गया है (*यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तम् इह धातवे करिति*-ऋग्वेद-1/164/49), वहीं पौराणिक आख्यानों में लोक ग्राह्यता के सोद्देश्य इस अलौकिक दिव्यता को हंस (परम्व्योम में व्याप्त आप्य वायु) पर आरूढ़ धवल वस्त्रावृत्ता (गौरी की अव्याकृत शुद्धता) के मानवी रूपक में धवन्यात्मक वाग् यंत्र यानी वीणा (प्राणिक तरंगों के सूत्रात्मक जाल से झंकृत ध्वनियाँ), करमाला (प्राकृतिक ध्वनियों की 108 वर्णमाला) व पुस्तक (प्रज्ञान/कला-कौशल के प्रतीक) से सुसज्जित कर वाग्-व्यापार के गूढ़तम रहस्यों को आकृति के दृश्य-सुबोध माध्यम द्वारा समझानें का प्रयास किया गया है। चूँकि स्नेहिल आकर्षणों द्वारा 'श्रत्' होने की इस क्रिया को 'श्रतो हीदं धानम्' के आशय वाले निर्वचन से व्युत्पन्न 'श्रद्धा' के यथोचित नाम से ही उद्बोधित किया गया है, अतः मन की निर्मलता के आधार पर श्रद्धापूरित भावों द्वारा इस विलक्षण दिव्यता को अनुभूत कर तथा उनके अनुग्रह को प्राप्त करके ही मानव वाग् आदि के सम्यक् आरोहण द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में ज्ञानव्रती बन कर परम वैभव को उपलब्ध हो सकता है। किंचिंत इन्हीं कारणों से वैदिक श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से श्रद्धा को

ही ज्ञान तथा ऐश्वर्य का वास्तविक स्रोत घोषित करती है (*श्रद्धाम् भगस्य मूर्धनि वचसा आ वेदयामसि ... श्रद्धया विन्दते वसु*–ऋग्वेद–10/1511–4)। इस प्रकार प्रकृति की गोद में पल्लवित होने वाले जीवन की जिजीविषा के लिए उपयोगी भूतादिक प्रपंचों का विज्ञान के उचित माध्यम से सम्यक् उपभोग करते हुए श्रद्धा के विशुद्धतम सूत्र द्वारा उच्चतम सत्य को आत्मसात् कर अमरत्व को उपलब्ध होना ही मानवी आदर्श का परम लक्ष्य बनता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस अलौकिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मानुषी भाषा अथवा बोलियाँ कितनी सक्षम हैं और इनका प्राकृतिक रीति से प्रस्फुटित हुए ध्वन्यात्मक अथवा स्वरात्मक वागों से कोई तादात्म्य बनता है या नहीं और यदि हाँ तो हूह, ओह्, पूह्, फिस्स आदि अस्पुफट ध्वनियों को निकालने वाले अद्यतन मानवों द्वारा यह क्यों कर व कैसे सम्भव हो पाया था? भाषाविदों से लेकर साधारणजनों तक को उद्वेलित करने वाले इन यक्ष–प्रश्नों के समाधान हेतु सम्पूर्णतः प्रकृतिवत् रहे तात्कालिक मानवों का प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने की असाधारण क्षमताओं की सम्भावनाओं पर भी विचार किया जाना आवश्यक हो जाता है। मानव एक विवेकशील प्राणी है, अतः अपने ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक आदि) द्वारा गृहीत ज्ञान का वह विवेक के आधार पर समुचित आकलन कर ही प्रतिक्रिया करता है। भर्तृहरि के अनुसार मानवों में अंतरभूत यह 'प्रतिभा' ही मस्तिष्क ग्रंथियों द्वारा गृहीत ज्ञान व तत्त्व की मीमांसा करके यह निर्णय करती है कि उनमें से कितना अंश ग्राह्य है और कितना त्याज्य। प्रत्येक विषय को ग्रहण कर उसका सम्यक आकलन करने की विशेषता के कारण ही शास्त्रों में प्रतिभा को नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा की संज्ञा से भी विभूषित किया गया है। इन्हीं तथ्यों को आचार्य पाणिनी अपने ग्रन्थ (पाणिनीय शिक्षा, 6–8) में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सर्वप्रथम चेतनतत्त्व का ज्ञानतत्त्व के साथ संपर्क होता है और वह अपने अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने की इच्छा से मन को प्रेरित करता है तथा मन शारीरिक शक्ति को प्रेरित करता है, जिससे वायु में प्रेरणा उत्पन्न होती है। यह प्रेरित वायु उरःस्थल (फेफड़ों) में गतिशील होकर मंद्र ध्वनि को उत्पन्न करती है, वही उर्ध्वगामी वायु मूर्धा में अवरुद्ध होकर मुख में पहुँचती है तथा पाँच प्रकार से विभक्त होकर ध्वनियों को उत्पन्न करती है। चूँकि मानवेतर प्राणियों के विपरीत मनुष्यों में चेतना व बुद्धि का अनुपातिक समन्वय बना रहता है, अतः अन्य जीवों की अपेक्षा मानवी ध्वनियों की प्रायिकताओं या आवृत्तियों में विविधाताएँ अधिक होती है जिसके कारण ही मानव सभी प्रकार की ध्वनियों को लगभग

उसी अनुरूप उच्चारित करने में सफल हो पाता है। संभवत: इन्हीं कारणों से अद्यतन मानवों में से कुछ विशिष्ट प्रतिभा वाले चिंतकों ने अपनी प्रज्ञा के बल पर वातावरण में गुंजायमान हो रहे विशिष्ट ध्वनि-तरंगों को सुनने, समझने व तदुपरांत मानवी सामर्थ्य के अनुसार उसे अपने वाग्यंत्रों के माध्यम से दुहराने का प्रयास किया होगा। इसी उपक्रम में उनके द्वारा उच्चरित हुई ध्वनियों से ही आक्षरिक व अनाक्षरिक वर्णों व पदों का स्वरूप उभरा होगा। कालांतर में मानवीय समाज की संरचना के पश्चात् संपर्क-सूत्र हेतु उत्पन्न हुई आवश्यकताओं के अनुरूप इन्हीं आद्य-उद्घोषकों द्वारा चिद्रित किए गए अर्थमूलक शब्दों के आधार पर सृजित हुए वाक्यों से ही प्रथम मानवी भाषा का आविर्भाव हुआ होगा। यद्यपि तरह-तरह के सिद्धांतों के माध्यम से प्रस्तुत की गई अपनी गवेषणाओं द्वारा विश्व के तमाम भाषाविदों ने इसकी एक अनुमानित रूप-रेखा को गढ़ने का भरसक प्रयास किया है, तथापि स्थानिक सूत्रों के प्रगाढ़तम मोह पाश से ग्रसित भाषा उत्पत्ति विषयक इन सभी विकल्पों का प्रमाणिक निराकरण अन्तत: वैदिक श्रुतियों की वैज्ञानिक दृष्टि के आधार से ही सुनिश्चित हो पाता है।

सौर-मण्डल की ध्वनियों के साथ मानुषी भाषा के तादात्म्य पर समुचित प्रकाश डालते हुए ऋग्वेद के दसवें मण्डल का प्रजापत्य: सूक्त यह स्पष्ट करता है कि इन सूक्ष्म ध्वनि-तरंगों को अपनी विशिष्ट प्रज्ञा के आधार पर अनुभूत कर (*पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान*) ज्ञानवान हुए (चाक्लृपे) कुछ अति प्रतिभावान आद्य-पुरुषों (महर्षियों) ने सम्यक मनन व अभ्यास के उपरांत इन्हें लगभग उसी लय में ही दुहराने का प्रयास किया। इस प्रकार इन प्रतिभासम्पन्न मानवों की वाग्-तंत्रिकाओं के मुक्त तथा अवरोधक क्रियाओं द्वारा प्रस्फुटित हुए स्वघोष व सघोष की श्रेणियों वाले मानुषी उच्चारणों के आधार पर ही स्वर तथा व्यंजन के द्विधात्मक भेद वाली आक्षरिक व अनाक्षरिक वाणी (मंत्र) का प्राक्ट्य हुआ, जिसे अपने सतत् अभ्यास के द्वारा आत्मसात् कर अन्य मनुष्यगण (पितर आदि) भी यथा अनुरूप ज्ञानवान हुए (*चाक्लृपे तेन ऋषय: यज्ञे जाते पितर: न पुराणे, पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान ये इमम् यज्ञम् अयजन्त पूर्वे*-ऋग्वेद- 10/130/6)। इस उपक्रम में इन आद्य महर्षियों ने सौर मण्डल के नवाष्टक तरंगों से गुंजायमान एक सौ आठ वर्णों वाली धवन्यात्मक वर्णमाला के स्थान पर पृथ्वी से सानुकूल सूर्य की सप्त रश्मि-तरंगों के दृष्टिगत सप्ताष्टक संकर्षणों से निसृत धवन्यात्मक वर्णों को मानुषी उच्चारण के लिए अधिक व्यावहारिक माना। इसी आधार पर पाँच मूल स्वरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) तथा अनुस्वार व विसर्ग के सप्त उपयोगी ध्वनियों तथा अनुष्टुप के अष्टात्मिक तरंगों के

संकर्षणों से प्रतिध्वनित क्, च्, ट्, त्, प्, य् तथा अघोष संघर्षी (श् वर्ग) व घोष उष्म प्रकृति वाले आठ मूल व्यंजनों को चिद्रित कर इनके आपसी समिश्रणों के आधार पर निष्पन्न छप्पन वर्णों के योग (7+56) से बने तिरसठ वर्णों के साथ चन्द्र ज्योत्स्ना के प्रतीकात्मक अर्धचन्द्र की अनुनासिक ध्वनि को संयुक्त कर चौंसठ वर्णों (25 स्वर, 25 वर्ग, 13 स्फुट व अर्धचन्द्र) की लौकिक वर्णमाला का गठन किया गया। (*त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः*- पाणिनीय शिक्षा-3)। 'प्रपंचसार' आदि ग्रंथों में तो उस काल की प्रचलित भाषा के प्रत्येक वर्णो के प्रणेता ऋषियों के नामों सहित उनके बीज प्रभावों का भी क्रमिक उल्लेख किया गया है। यही नहीं बल्कि वर्ण-पद आदि के क्रम से भाषा के प्रारम्भिक स्वरूप को उजागर करने के पश्चात् इन आद्य-ऋषियों ने सृष्टि निर्माण में रही (यज्ञेन ताम अनु अविन्दन् ऋषिषु) ध्वनियों की प्रभावी भूमिकाओं का सूक्ष्म अध्ययन कर (तद् एषाम् निहितम् गुहा आबिः) जिन-जिन शब्दों से जगत के जिन-जिन पदार्थों का स्वरूप उभरा उन्हीं-उन्हीं धातुओं के क्रियात्मक संकेतों के आधार पर उन सभी का उपयुक्त नामकरण करते हुए (नामधेयम् दधानाः) अर्थजनित पदों वाली मानुषी (वाचः पदवीयम्) भाषा के श्रेष्ठतम स्वरूपों को (यद् एषाम् श्रेष्ठम् यत अरिप्रम्) भी निरूपित किया (*नामधेयम् दधानाः यत् एषाम् श्रेष्ठम् यत् अरिप्रम् आसीत् प्रेणा तत् एषाम् निहितम् गुहा आविः ... यज्ञेन वाचः पदवीयम् अयन ताम अनु अविन्दन् ऋषिषु*-ऋग्वेद-10/71/1-3)। इसी क्रम में इन आद्य-महापुरुषों ने अपनी उत्कट श्रोतव्य कुशलताओं के माध्यम से स्वरात्मक ध्वनियों को प्रकट करने वाले सूर्य के आरोगादि सप्त ऐन्द्र प्राणों द्वारा निसृत पृथ्वी के लिए लाभकारी सप्त रश्मि-तरंगों के (*रथ्यः न रश्मीन्*) आधार पर ध्वनित् सप्त छंदों (*गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप* व *जगती-गायत्रेण प्रति मिमीते ... सप्तवाणी*- ऋग्वेद-1/164/24) को श्रवण कर (*पन्थाम् अनुदृश्य*) वेद के कल्याणकारी ज्ञान (धीराः) को इन्हीं सप्त छंदात्मक ऋचाओं तथा सूक्तों में ही समेटे रखने का (*अनु आलेभिरे*) अद्भुत प्रयास भी किया (*सहस्तोमाः सहछन्दसः आवृतः सहप्रमाः ऋषयः सप्त दैव्याः, पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य धीराः अनु आलेभिरे रथ्यः न रश्मीन्*-ऋग्वेद-10/130/7)। भारतीय ग्रन्थों में प्रत्येक मंत्र से पूर्व के विनियोग प्रभाग में उल्लिखित मंत्र-प्रणेता ऋषि व उद्गमित स्रोत अर्थात प्राकृतिक (दैविक) शक्ति के नाम एवम् ध्वनि-प्रभाव (बीज) सहित छंदादि का संदर्भ इन्हीं तथ्यों का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करता है।

कालांतर में इन्हीं सप्त छंदों की भाव-भूमि पर ही सप्त प्राण, सप्त धातु, सप्त रस,

सप्त रंग, सप्त लोक, सप्त धान्य, सप्त मातृकाएँ, सप्त दैनंदिनी वार, सप्त संगीत स्वर जैसे विविध सप्तकों का प्रारूप भी उभर कर सामने आता गया। अपने वाक्-अवयवों के वैशिष्ट्य के आधार पर मानव जहाँ उदात्त, उदात्तर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, निघात, स्वरित व एकश्रुति की ध्वन्यात्मक विविधताओं के माध्यम से षड्जादि सप्त स्वरों वाले छंदों का सम्यक् गायन करने में समर्थ होता है, वहीं मानवेतर जीव अपने सीमित वाचिक क्षमताओं के कारण सप्त छंदों के स्वर विशेष को ही प्रकट कर पाते हैं। उदाहरण के लिए मोर षड्ज का, चातक ऋषभ का, बकरा गांधार का, क्रौच मध्यम का, कोयल पंचम का, मेढ़क धैवत का तथा हाथी निषाद की ही ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इस तरह पृथ्वी के सभी प्राणी अपनी वाचिक क्षमताओं के आधार पर वायुमण्डल में गुंजायमान सप्त सुरों की ध्वनियों को ही एन-केन-प्रकारेण उच्चारित करते है। इस तरह सम्पूर्णत: छंदमय होने के कारण मनुष्यों द्वारा व्यवहृत हुई वेद की इस खगोलीय अनुकृति (भाषा) को शौनकीय बृहद्देवता (4/113) में इसकी प्रकृति के अनुरूप ही 'सौरी' अर्थात सुरों में प्रवृत रहने वाली भाषा के सार्थक उद्बोधन से ही सम्बोधित किया गया है (*तस्मै तु सौरीं नाम्ना वाचं*)। किंचिंत इन्हीं सभी कारणों से दिव्य ध्वनियों के श्रवण द्वारा उद्घाटित मंत्रों के वैदिक संकलनों को भारतीय वाङ्मय में जहाँ 'श्रुति' के नाम से चिह्नित किया गया है, वहीं अपनी प्रज्ञा-चक्षुओं द्वारा इन मंत्रों के आशयों को अनुभूत करने वाले आद्य मनीषाओं को 'द्रष्टा' तथा इन द्रष्टाओं द्वारा निरूपित किए गए आप्त विचारों को इसी अनुरूप 'दर्शन' की यथायोग्य संज्ञाओं से ही विभूषित किया गया है।

संस्कृत की 'भाष्' धातु (भ्वादिगणी, जिसका आशय होता है-बोलना या कहना) से व्युत्पन्न हुई 'भाषा' की निरंतरता सामान्यत: अभ्यास व अनुकरण की प्रणालियों पर ही अवलंबित रहती है। अत: आद्य महर्षियों की अपूर्व मेधा के परिणामस्वरूप 'देववाक्' (आन्तरिक्ष्य ध्वनियाँ) के मानवी संस्करण के रूप में परिणित हुई 'सौरी' के लयात्मक स्वराघातों की निरंतरता को पीढ़ी-दर-पीढ़ी यथावत बनाए रखने के उद्देश्य से परवर्ती विद्वतजनों ने गुरु-शिष्य परम्परा के तहत लिपि की अपेक्षा इसकी वाचिक निपुणताओं पर ही विशेष ध्यान दिया। इस प्रक्रिया के तहत मंत्रों से लेकर श्लोकों या फिर ऋचाओं व सूक्तों से लेकर मंडलों, प्रपाठकों व कांडों तक को कंठस्थ ही नहीं किया जाता रहा, अपितु इनके उच्चारणों तथा गायन विधाओं का सम्यक् अभ्यास द्वारा यथावत दुहराने का सामूहिक प्रयास भी किया जाता रहा। वैदिक वाङ्मय के विशाल स्वरूप को सँजोए रखने के उद्देश्य से विषयानुरूप पारंगत रहे आचार्यों ने पठन-पाठन की विशेषताओं के

आधार पर चयनित स्थानों में अपने अलग-अलग गुरुकुलों को भी स्थापित किया। विषयानुरूप प्रतिष्ठित रहे इन गुरुकुलों से दीक्षित होकर निकले स्नातकों (शिष्यों) को समाज में उनके कुलगुरुओं के प्रवरों व गोत्रों (यथा-भार्गव, वशिष्ठ, भरद्वाज, कौशिक, काश्यप आदि) के अतिरिक्त गुरुकुल की शाखाओं (आचार्य कुल, यथा-शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, कठ, कपिष्ठल, माध्यन्दिन, कौथुमीय, जैमिनीय, पैप्पलाद, शौनक आदि) तथा अनुष्ठानिक, गृहस्थ व सामाजिक शिक्षा पद्धतियों के आधार पर परिभाषित कल्पसूत्रों व फिर विषयानुरूप उनकी सिद्धताओं (अर्थात यजुर्वेदी या द्विवेदी, सामवेदी या त्रिवेदी, वाचस्पति, शास्त्री, भेषज/वैद्य आदि) के आधारों पर ही चिद्रित किया जाता रहा। कालांतर में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप विस्तारित हो रहे मानवी समाज को अनुशासित करने के लिए नित-नवीन स्मृतियों की रचनाओं के साथ-साथ इन गुरुकुलों में इन्हीं के पठन-पाठन पर जोर दिया जाने लगा। इस प्रकार नए विषयों (स्मृतियों) के आगमन से पुराने (श्रुतियों) के प्रति अपनाई गई स्वाभाविक उदासीनताओं ने भाषा के आदिम प्रवाह को एक नया मोड़ दे दिया। काल-भेद के तात्कालिक परिवेश के अनुरूप अपनाई गई स्मृतियों की अपेक्षाकृत सरलतम शैलियों ने अंततः ध्वनि, शब्द, रूप, अर्थ व वाक्य के स्तर पर श्रुतियों की भाषायी मौलिकता को अपने ढंग से प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। उदाहरण के लिए वैदिक भाषा में प्रयुक्त ळ, ळ्ह, जिह्वामूलीय व उपधमानीय ध्वनियाँ, लृ, उदात्त व प्लुत स्वर, ईम्, सीम्, वै आदि निपातऋ अक्तु, अर्जुनी, श्वेत्या, गातु, ग्मा, ज्मा आदि शब्द शनैः शनैः लुप्त हो गए और इसी के साथ-साथ अच्, अम्, क्षद्, जिन्व्, ध्रज् आदि धातुएँ भी अप्रयुक्त होती गईं। परिस्थितिजन्य कारणों से उत्पन्न इन स्वाभाविक क्षरणों पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से औपमन्यव, वार्ष्यायणि, क्रौष्ट्रिकि, यास्क आदि तात्कालिक व्याकरणाचार्यों ने सौरी की कुछ अलौकिक ध्वनियों सहित श्रुतियों के गूढ़ रहस्यों को भाषायी कौशलता के साथ निघण्टु व निरुक्त के माध्यम से सरलतम विकल्पों द्वारा व्यावहारिक निर्वचन करने का सर्वमान्य सूत्र भी विकसित किया।

इन सभी सचेष्टाओं के उपरांत भी निरंतर विस्तारित हो रहे मानवी समाजों के विस्थापनों आदि के कारण यायावर बनने के लिए बाध्य हुए कुछ समूह भी प्रकारांतर में गुरु-कुलों के आधार-स्रोत से मूलतः कटते ही गए। स्रोत-विहीनता की इस स्थिति में इनके द्वारा कुछ भाषिक तथ्यों को या तो छोड़ दिया गया या फिर कुछ नए रूपों को अपनी-अपनी सुविधानुसार जोड़ लिया गया। स्थान-भेद द्वारा उत्पन्न विसंगतियों के परिस्थितिजन्य आधारों पर विकसित हुए अपभ्रशांत्मक दोषों व फिर इनके प्रतिफलनों से

निसृत हुई प्राकृत, द्राविड़, अवेस्ता, म्लेच्छ, दरद, आसुरी, यवनी, पह्लवी, पालि आदि भाषाओं के संभावित सक्रमणों से परिमार्जित सौरी को अक्षुण्ण बचाए रखने के प्रयास में आचार्य पाणिनी ने इसका उचित संस्कार (सम् कृत:) कर इसे चौवन वर्ण वाली आधुनिक संस्कृत के अति सरलतम स्वरूपों में प्रस्तुत किया। आचार्य पाणिनी के उपरांत उनके परवर्ती कात्यायन, पतंजलि, भर्तृहरि आदि वैयाकरणों के अथक प्रयासों से प्रकारांतर में किए गए कुछ न्यूनाधिक परिवर्तनों (अड़तालीस वर्णों) के अपने सुबोधगम्य स्वरूपों के साथ संस्कृत जहाँ यथावत बनी हुई है, वहीं प्राकृत, पालि आदि अपभ्रशांत्मक भाषाओं के साथ इसकी परस्परताओं के आधार पर शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि नवीन शाखाओं का भी प्रस्फुटन हुआ और कालांतर में इन्हीं के गर्भों से ही आधुनिक भारत की प्राय: भाषाओं व बोलियों का अस्तित्व भी धीरे-धीरे उभरता गया। इधर गुरुकुल की परम्परागत शैक्षणिक व्यवस्थाओं से बिछुड़ चुके वैदिक ऋषि अत्रि, गाथ, गालव के शिष्यों द्वारा विस्थापित सुदूर पश्चिम के परवर्ती समाजों द्वारा प्रकारांतर में अपनाई गई त्रुटिपूर्ण भाषायी शैलियों से नि:सृत हुई एट्टिक (ग्रीस पूर्व की भाषा), गॉथिक (जर्मनिक शाखा की प्राचीन भाषा), गेलिक (मध्य यूरोप की मृत भाषा) व इसी अनुरूप यवनी, पह्लवी व आसुरी बोलने वाले किरात, पुलिंद व मय परिवारों द्वारा विभिन्न स्थानों में विस्थापित हुए समाजों की रूपान्तरित बोलियों से ही चीनी, ऑस्ट्रो-एशियाटिक तथा अमेरिका के मूल निवासियों की प्राचीन भाषाओं का स्वरूप उभरकर सामने आ पाया था। इस तरह अवेस्ता, आसुरी, यवनी, म्लेच्छ आदि सक्रमित भाषाओं के आपसी सम्मिश्रणों तथा भौगोलिक व जलवायविक परिवेशों के युग्म प्रभावों से प्रत्युत्पन्न हिट्टाइट, सेमेटिक, हैमेटिक, एट्टिक, गॉथिक, गेलिक, कोइने, बाल्टिक, स्लाविक आदि-आदि शाखाओं के क्रमिक वंश-विस्तारों से ही आधुनिक विश्व की अन्यान्य भाषाओं व बोलियों का वर्तमान स्वरूप उभर कर सामने आ पाया है। आज के सन्दर्भ में विश्व की प्रचलित लगभग 2796 भाषाओं और बोलियों को उनके स्वरूप समानता के आधार पर भाषाविद् मुख्यत: दस से अट्ठारह पारिवारिक इकाइयों में विभाजित करते हैं।

भौगोलिक, जलवायविक व सामाजिक परस्परताओं के आधार पर विस्तारित भाषाओं की विभिन्नताएँ तो एक प्रकार के पत्तों व टहनियों के संबंधों तक को ही उजागर करती हैं, जबकि डाल आदि के क्रम से ये टहनियाँ अंतत: एक पुष्ट तने से भी जुड़ी होती हैं, जो प्रकारांतर में अपने अदृश्य (भूगर्भीय) स्रोतों द्वारा ही अस्तित्व में आ पाती हैं। भाषायी वटवृक्ष का यह आधुनिक स्वरूप अपनी आरंभिक अवस्था में कुछ इसी तरह से पनपा

रहा, परन्तु समय की बाढ़ के साथ-साथ इसकी शाखाओं से प्रस्फुटित हुए जटाओं (स्थानिक सूत्रों) के सघन घेरे ने शनैः-शनैः मूल तना को ही चारों ओर से ढक लिया। इस प्रगाढ़ता के कारण प्रायः स्थानिक सूत्रों (यानी जटाओं) को ही भ्रमवश भाषा रूपी वृक्ष का मूल आधार मान लिया जाता है। कतिपय भाषाविदों द्वारा विश्व को विभिन्न भाषायी परिवार में विभाजित करने की मानसिकताओं के पीछे कुछ इसी तरह की मृग-मरीचिकाओं का ही प्रभाव काम कर रहा है, जबकि इन का मूल स्रोत निर्विवाद रूप से लौकिक सौरी से ही जुड़ा हुआ है। 'द स्टोरी ऑफ सिविलाइजेसन्' में विल ड्यूरॉट विश्व की सभी भाषाओं का विश्लेषण करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चूँकि संस्कृत (वैदिक भाषा यानी सौरी) के गुण विशेष संसार भर की सभी भाषाओं में मिलते हैं, अतः यही सभी भाषाओं की जननी सिद्ध होती है। इसी तरह थॉमस मॉरिस भी अपनी पुस्तक 'इण्डियन एन्टीक्वीटिस्' के खण्ड चार में प्रसिद्ध भाषाविद् हॉलहेड का हवाला देते हुए स्पष्ट रूप से वैदिक भाषा को ही पृथ्वी की मूल भाषा घोषित करते हैं। लौकिक सौरी के मूल स्रोत के कारण ही विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में इसके शब्द लगभग उन्हीं आशयों के साथ ही प्रतिष्ठित हैं। उदाहरण के लिए लौकिक सौरी के 'असुर मेधा' अवेस्ता में 'अहुरमज्दा', 'नास्ति नाभूत्' फारसी में 'नेस्त नाबूद', 'हर्म्य' व 'जाल्मः' अरबी में 'हरम' व 'जालिम', 'पथ' व 'स्वेद' अंग्रेजी में 'पाथ' व ''स्वेट'', 'श्वान' यूनानी में 'क्वान', 'आदि' मिस्र की भाषा में 'आत', ''कुल'' अमेरिका की मय भाषा में ''कुलु'', 'ध्यान' स्वाहिली में 'धानी', ''शतम्'' लैटिन में ''सेन्टुम'', 'स्थान' चीनी भाषा में 'तान', 'युयुत्स' जापानी में 'जुजुत्सु', 'ईरा' हिब्रू में 'एरेछ्'-जर्मन में 'एर्दे', 'मेरू' तुर्की में 'मेरूख', 'अम्ब' सिरियन में 'आमो'-सिथियन में 'अम्माल'-सामोपेडिव में 'अम्म' आदि-आदि जैसे इन भाषाओं में पाए जाने वाले अनेक शब्द इसके अकाट्य प्रमाण हैं।

सृष्टि के नित्य परिवर्तनशील नियमों के अनुरूप ही नित नूतन आधारों पर रूपान्तरित होती गई भाषा की इस विस्तृणता का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक युग की प्रचलित भाषाओं में मात्र संस्कृत ही अपने वैशिष्ट्यों के आधार पर वैदिक भाषा (लौकिक सौरी) से अपेक्षाकृत साम्यता रखती है। यह सर्वविदित है कि प्राकृतिक ध्वनियों व सृष्टि की प्राणिक ऊर्जाओं में अविनाभाव संबंध है और इन्हीं प्राणिक ऊर्जाओं के मात्रात्मक आधारों पर ही जैविक सृष्टि के विविधात्मक स्वरूपों के साथ इनकी मानसिक व शारीरिक उत्कृष्टताओं का भी सम्यक विकास संभव

हो पाता है। प्राणिक ऊर्जा के सांकेतिक रूपों में प्रस्फुटित हुई इन प्राकृतिक ध्वनियों का अपने श्रद्धापूरित भावों द्वारा ध्वन्यात्मक शब्दों के मानुषी अनुकृति में प्रकट करके ऋषि-प्रज्ञा ने एक प्रकार से भावी संततियों को सकारात्मक ऊर्जा के ऐच्छिक संचयन का अलभ्य सुयोग ही उपलब्ध कराया है। *श्रद्धा सूत्रों के माध्यम से मानुषी-प्रज्ञा में अक्षरसः अवतरित होने के कारण भारतीय वाङ्मय में शब्द को 'श्रद्धा' भी कहा गया है।* अतः श्रद्धा भाव से उच्चरित किए गए शब्दों की ध्वनियाँ अपनी मौलिकता के शुद्धतम आधारों पर स्नायविक तथा मानसिक पुष्टता को सम्बलता प्रदान करती हैं, जबकि श्रद्धा के अभाव में शब्दों की लयात्मक सरसताएँ अपने शुष्क भावानुरूप उच्चारणगत विसंगतियों के रूप में प्रकट होने लगती हैं। इन विसंगत ध्वनियों में प्रकृतवत् विद्यमान नकारात्मक ऊर्जाएँ अपनी गुणधर्मिताओं के अनुरूप उच्चारणकर्ता के मानसिक व शारीरिक तंत्रिकाओं की नैसर्गिक लचकताओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना नही रह पाती हैं। ध्वनियों के इन सदासद् प्रभावों का परीक्षण संगीत साधना की सुरम्य तन्मयता तथा क्रोधादि में उच्चारित किए गए कर्कश स्वरों के तुलनात्मक अनुभवों द्वारा आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। ध्यान के शान्त क्षणों के मंद स्पन्दनों तथा उत्तेजनाओं की अवस्था में होने वाली तीव्र धड़कनों के मूल में ध्वनियों की बारंबरता ही संबंधित व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक स्थितियों को प्रभावित करती है। आधुनिक विज्ञान के प्रयोगों ने तो यहाँ तक सिद्ध कर दिया है कि नव अंकुरित पौधों के निकट संगीत की मधुर धुनों को बजाने से उनके शीघ्र विकसित होने की सम्भावनाएँ अधिक प्रबल हो जाती हैं। किंचित इन्हीं कारणों से '*अधरं मधुरं वाचं मधुर*' या फिर '*ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय, औरों को शीतल करे खुद भी शीतल होय*' के सारगर्भित संकेतों द्वारा मधुर वाणी के प्रयोगों की सार्थक उपयोगिता पर ही बल दिया गया है।

वाणी के इन मृदु भावों के अतिरिक्त अपने सजातीय नैसर्गिकता के वैशिष्ट्य से आपूरित मातृ भाषा के प्रति रागात्मक अनुराग भी संबंधित व्यक्ति को सकारात्मक परिणाम देते हैं। महाभारत कालीन अभिमन्यु प्रकरण ही नहीं अपितु आधुनिक विज्ञान के शोधों ने भी गर्भिणी द्वारा उच्चरित व श्रावित ध्वनियों का गर्भ में पल रहे शिशुओं पर पड़ने वाले प्रभावों को प्रामाणिक रूप से रेखांकित किया है। मातृभाषा के नैसर्गिक सहजता के विपरीत भौगोलिक तथा जलवायविक भिन्नताओं के कारण वागिन्द्रियों की बनावटगत क्षमताओं के आधार पर प्रस्फुटित विजातीय बोलियों व भाषाओं के दैनंदिनी प्रयोगों के कृत्रिम प्रयासों से स्नायु संबंधी नैसर्गिक दक्षताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अमेरिका के नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ के तंत्रिका विज्ञानियों के अनुसार बौद्धिक गतिविधियों के लिए जिम्मेवार मस्तिष्क ग्रंथियों के न्यूॅरान सेल्स की क्षमताओं के आधार पर ही शरीर में विविध एंजाइम्स का स्राव नियंत्रित होता रहता है और इन्हीं एंजाइम्स में होने वाले विकार व शमन की प्रक्रियाओं द्वारा कोशिकाओं के सम्यक् सन्तुलनों से देहयष्टि संबंधित होती रहती है (डॉ. दीपक चोपड़ा की कृति 'क्वाण्टम् हीलींग' में वर्णित तथ्यों के आधार पर)। इस तरह विजातीय ध्वनियों के दीर्घकालिक परिणामों से न्यूरान्स के नैसर्गिक गणकों में होने वाले उलटफेर से प्रकृति प्रदत्त वैचारिक प्रखरताएँ जहाँ हीन कुंठाओं से ग्रस्त हो जाया करती हैं, वहीं एंजाइम्स संबंधी विकारों से बहुत हद तक देहयष्टि व भाव-भंगिमाओं में भी बदलाहट के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसका सापेक्ष परिणाम विजातीय रक्त समूहों से जीवन की हानि तथा विजातीय माटी व मौसमों के प्रभावों से फलों, सब्जियों, अनाजों आदि के स्वादों व गुणों में होने वाली भिन्नताओं के स्पष्ट प्रमाणों के आधारों से भी परखा जा सकता है। इन तथ्यों के उपरांत भी प्रतिस्पर्धा की अंधी दौड़ की मानसिकता से ग्रसित युवाओं का एक महिमामण्डित भाषा के प्रति बढ़ते आकर्षण के एवज में अपनी भाषाओं के प्रति उपजे दुराग्रह का भाव उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से पराश्रित तथा कुंठाग्रस्त ही बना रहा है। नेशनल ज्योग्राफिक सोसायटी एण्ड लिविंग टंग्स इंस्टीट्यूट फॉर एंडेजर्ड लैग्वेजेज द्वारा जारी एक सर्वेक्षण के अनुसार आधुनिकता की संवाहक के रूप में प्रतिष्ठित एक भाषा के प्रति उपजे मोह के चलते हरेक पखवाडे में विश्व की एक क्षेत्रीय भाषा लुप्त हो जाती है। इन लुप्त हो गई भाषाओं के साथ उनका ज्ञान भंडार, इतिहास, संस्कृति आदि भी स्वाभाविक रूप से सर्वदा के लिए विलुप्त हो जाते हैं। सम्भवत: इन्हीं सब कारणों से विश्व के सभी शिक्षाशास्त्री एक मत से प्रारम्भिक शिक्षा के माध्यम को मातृभाषा में ही बनाए रखने को बौद्धिक व दैहिक विकास के लिए अपरिहार्य ठहराते हैं। इसी के साथ यह भी प्रमाणित हो चुका है कि देश-काल की परिस्थितजन्य बाध्यताओं के कृत्रिम आधारों पर प्रस्फुटित बोलियों और भाषाओं की अपेक्षा ऋषि प्रज्ञा द्वारा प्राकृतिक ध्वनियों की अनुकृति के रूप में उद्घाटित वैदिक मंत्र अपने सार्वभौमिक स्वरूपों के कारण मानुषी परिवेशों के लिए उनके क्षेत्रीय भाषाओं के इतर भी हितकारी ही होते हैं। अभी हाल में ही जर्मनी के ध्वनि विशेषज्ञों द्वारा किए गए शोधों से यह उजागर हुआ है कि ॐ तथा गायत्री मंत्रों के सस्वर उच्चारण के नियमित अभ्यासों से कैंसर जैसे दुसाध्य रोगों से ग्रसित रोगियों की स्थितियों में आशातीत सुधार के साथ-साथ मंद बुद्धि वाले लोगों के मानसिक विकास में भी

अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी के लक्षण पाए गए हैं। स्वराघात की लयबद्धता वाली इन कर्ण-प्रिय ध्वनियों के सूक्ष्म प्रभावों के विपरीत औद्योगिक विकास के आधुनिक युग में यन्त्रों के बढ़ते शोर से उत्पन्न ध्वनि-प्रदूषण की अनियंत्रित विकरालता मानवी परिवेश के लिए एक भयावह त्रासदी के रूप में ही उभर रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक आकड़े के अनुसार शहरी आबादी के अधिकतर लोग ध्वनि प्रदूषण के चपेट में आकर बहरापन, घबड़ाहट, चिड़चिड़ाहट, अनिद्रा, मानसिक उद्विग्नता जैसी कई बिमारियों से ग्रसित हो चुके हैं। इनके उपचार के लिए चिकित्सक जहाँ औषधियों के अलावा ध्यान योग तथा एकांत स्थानों पर लम्बे प्रवास के परामर्शों द्वारा एक प्रकार से प्राकृतिक ध्वनियों में निविष्ट प्राणिक ऊर्जा की हितकारी क्षमता को ही जाने अनजाने में इसके निदान के लिए प्रभावी विकल्प के रूप में रेखांकित कर देते हैं, वहीं ध्वनि-प्रदूषण की बढ़ती विकरालता को उचित उपकरणों के माध्यम से स्तब्ध कर वैकल्पिक ऊर्जा का अभिनव स्रोत भी प्रशस्त किया जा सकता है।

प्राकृतिक ध्वनियों की स्वराघात संबंधी सकरात्मक प्रभावों की गवेषणाओं के आधार पर यह भी प्रमाणित होता है कि विश्व के भाषायी परिवारों में इन गुणों की निकटतम अर्हताएँ इसके एकमात्र संस्कारित प्रतिकृति के रूप में उपलब्ध 'संस्कृत' में ही पायी जाती है। ऋषि प्रज्ञा द्वारा प्रणीत संस्कृत के अतिरिक्त कुछ हद तक इसके तत्सम शब्दों की बहुलता वाली हिन्दी, बंगला, तेलगू, मलयालम सरीखी अनुषांगिक भाषाओं का भी मानुषी विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता देखा गया है। अस्तु दैनिक चक्कर्या में कार्यसाधक ज्ञान की वरीयता के आधार पर इनमें से किसी भी भाषा का श्रद्धापूर्वक अभ्यास द्वारा आध्यात्मिक ऊर्जा को अपने अन्दर आहूत कर या फिर भौतिक स्मृद्धि के लिए वैज्ञानिक उपकरणों के उन्नत माध्यमों द्वारा ध्वनियों की शुद्धतम ऊर्जा का सम्यक् दोहन कर मानव अपने सर्वांगीण उन्नयन के अभीष्ट को सुगमता से प्राप्त कर सकता है और यही वर्तमान के नित प्रदूषित हो रहे विषाक्त वातावरण से मानवता को बचाए रखने की अमोघ संजीवनी भी है और मानुषी प्रज्ञा के नैसर्गिक प्रखरता की कुंजी भी। कृतज्ञ मानवों द्वारा ऋषि प्रज्ञा के इस अलभ्य सूत्रों का मानवता के हितार्थ सचेष्ट उपयोग करना ही उन आद्य महर्षियों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी, जिसकी उन्हें आतुरता से सतत् अपेक्षा भी रही होगी।

'इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः'

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

21वीं सदी में वैदिक प्रज्ञान और शिक्षा की प्रासंगिकता

प्रमोद कुमार दुबे*

वेद के नासदीय सूक्त (ऋ,10/129) को याद करना इसलिए आवश्यक लग रहा है कि आज शिक्षा का दिल नासद है, शिक्षा जगत पर नासदीयता छा गई है, प्रलय हो चुका है मनु उदास है ऋद्धा-कामयनी का अब तक पता नहीं है। सृजन-यज्ञ की त्रिकशक्तियाँ अज्ञात हैं, चारों ओर असृष्ट जड़त्व फैल रहा है, वेदविहीन विप्र सोचनीय हो चुके हैं। शिक्षा अपने मूल स्वरूप और ध्येय से विचलित है। जहाँ-जहाँ प्रायोजित विकास पहुँच रहा है स्वत्व बाधित हो रहा है, आत्मोल्लास कुण्ठित हो रहा है, और जहाँ-जहाँ यह विकास नहीं है, वहाँ नैसर्गिक मुस्कान तो है, लेकिन भूख है, गरीबी है। जिनके पास धन है वे उपभोक्ता की गिरफ्त में है, वे असीमित जरूरतों से परेशान हैं। कहीं धन का अभाव सता रहा है तो कहीं धन का प्रभाव रौंद रहा है।

ऐसी नासदीयता से मुक्ति नहीं मिली तो व्यर्थता बोध से उबरना मुश्किल होगा और विश्व जीवन का भविष्य अंधकारमय रहेगा इसका इलाज न राजनैतिकत-आर्थिक विचारों के पास है और न ईश्वरीय आस्था के विचारों के पास। वे संस्थाएँ मनुष्य को या तो प्रवृत्ति की आर ले जाती हैं अथवा निवृत्ति की ओर। ईशावासोपनिषद्के शब्दों में कहें तो इस समय विद्या का अंधकार छाया है अथवा अविद्या का अधंकार। शिक्षा को अपने मकसद का औजार बनानेवाली ताकतों के कर्म की सूची ऐतिकासिक क्रम में परिणामों के विश्लेषण सहित देखें तो आप पाएँगे कि आज की अधिकतम आर्थिक-सामाजिक भूमंडलीय परिस्थितियाँ इन्हीं की रची-बुनी हैं और ये परिस्थितियाँ सुखद नहीं हैं। इनके दावे खोखले हैं।

शिक्षा जगत की नासदीयता से मुक्ति के लिए ऋग्वेद के नासदीय सूक्त से मार्गदर्शन लेना होगा। क्योंकि इस सूक्त से सृष्टि पूर्व की निष्क्रिय दशा और उसके

* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

विरूद्ध प्रारंभ हुई सृष्टि-प्रक्रिया का भेद ज्ञात होता है। यह सूक्त ब्रह्मण्ड की सृजन-प्रक्रिया और मनुष्य की मनोगत सृजन-प्रक्रिया, दोनों को समान रूप से उद्‌घाटित करता है। इससे मनुष्य की सृजनशीलता और इतिहास के बीज पैदा होने वाली प्रतिकूल अथवा अनुकूल परिस्थितियों की व्याख्या की जा सकती है। यह सूक्त बतलाता है कि किसी अस्तित्व की जीवन्तता उसके सृजन धर्म में निहित है। जब सृजन की त्रिकशक्तियाँ विपरीत ऐतिहासिक परिस्थितियों में अवरूद्ध हो जाती हैं तब स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है और वह अस्तित्व कच्चे माल की तरह दूसरे के सुख-समृद्धि का साधन बन जाता है। उसमें स्वयं इच्छित सृजन का उल्लास और भविष्य नहीं रहता। ऐसी पशुवत पराधीन दशा से मुक्ति का मार्ग तब मिलता है जब त्रिकशक्तियाँ जाग्रत हों और उन्हें धारण करनेवाला मुक्त चिदाकाश खुले। इस सूक्त की पहली ऋचा का व्यवहारिक अभिप्राय यही है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योम परोयत्
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीराम्।

(ऋ 10/129/1)

असद् नहीं था, तब सद् नहीं था, रज (सदासद) नहीं था और न इसके परे का व्योम। किस के सुखे के लिए किसने किसे आवृत्त कर लिया था। यह घेराबंदी गहन-गंभीर थी। नासदीय सूक्त की यह पहली ऋचा त्रिकशक्तियों की याद दिलाती है, जिनके आधार पर राजसत्ता का त्रिवर्ग खड़ा होता है, जिसके अभाव में अराजकता उत्पन्न होती है। राजसत्ता का त्रिवर्ग मनुष्य चित्त में निहित त्रिकशक्तियों का समुच्च होता है। वेदत्रयी न केवल सृष्टि का शक्ति तंत्र है, बल्कि यह मनुष्य और मनुष्य द्वारा निर्मित राज्यव्यवस्था का भी शक्ति तंत्र है। इसके विघटित हो जाने के बाद स्वत्व नहीं रह जाता और न सम्प्रभुता बच पाती है। शिक्षा का लक्ष्य है कि वह लोक मानस को मुक्त करे, उनकी त्रिकशक्तियों का बोध कराए, इनके परस्परावलंबी और अविभाज्य संबंधों का ज्ञान दे। व्यक्ति-समाज, देश और भूमंडल सहित विराट खगोलीय काया के एकत्व के अनुभव से ही उदार चित्त मनुष्य का निर्माण होता है लेकिन जब सत्ता-स्वार्थ की सीमा में मनुष्य चेतना को बाधित करने के लिए शिक्षा औजार बनाई जाने लगी, वैदिक अवधारणा का मनुष्य लुप्त होने लगा।

पराधीन भारत में आक्रांता शक्तियाँ और करती भी क्या? उन्होंने पराधीनता की घेराबन्दी को गहन-गंभीर बनाने का अथक परिश्रम किया। यह घेराबन्दी थी, मनुष्य

की स्वतंत्र सृजनशील चेतना पर राजसत्ता के इतिहास की घेराबन्दी। सृजनशीलता और इतिहास का रिश्ता हमेशा प्रतिकूल ही नहीं होता। जो अंग्रेज भारत की सृजन चेतना को रौंद रहे थे, वही अपने देश में सभ्यता-संस्कृति को उत्कर्ष की ओर ले जा रहे थे। जब भी भारत के मनस्वीजन अपने देश की उन्नति का प्रयास करते, उनके प्रयासों को अंग्रेज तोड़ देते अथवा अपने स्वार्थों की ओर मोड़ देते और अपनी घेराबन्दी कायम रखते। शिक्षा के सिलसिले में टी.बी. मैकाले का नाम अक्सर लिया जाता है। 2 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश पार्लियामेंट में उसके दिये गये अभिभाषण का उल्लेख होता है। उसने कहा था कि 'मैंने पूरे भारत का दौरा किया। मुझे एक भी व्यक्ति नहीं दिशा जो भिखारी हो या चोर। मैंने उस देश में ऐसी समृद्धि देखी, ऐसा चरित्र देखा, लोगों की दृढ़ इच्छा देखी कि मैं उस देश पर विजय की बात सोच ही नहीं सकता। सही मायने में हम तब तक जीत नहीं सकते जब तक उस देश की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक की रीढ़ तोड़ न दें। इसके लिए में वहाँ प्राचीन आध्यात्मिक-सांस्कृतिक शिक्षा हटाने का सुझाव देता हूँ। जब भारतीय सोचने लगें कि विदेशी सामान और अंग्रेजी भाषा उनसे श्रेष्ठ है तब वह देश आत्मसम्मान और अपनी संस्कृति खो देगा। वह वैसा बन जायेगा जैसा अधीनस्थ देश हमें चाहिए। 'इस कथन का आश्यर्चजनक पक्ष यह नहीं है कि एक साम्राज्यवादी अंग्रेज ऐसी सोच रखता था, आश्यचर्यजनक पक्ष तो यह है कि एक युवक मात्र एक दौरे में भारत के जनजीवन का इतना गहरा अध्ययन कैसे कर सका? और ब्रिटिश सल्तनत को अपनी चमत्कारी प्रतिभा से चिरस्थायी परामर्श दे डाला। मोटा-मोटी कहें तो एक सौ बारह वर्षों तक अँग्रेज हुकमरान एक युवक की राय के पीछे चलते रहे। इतिहास में ऐसी जादूगरी उत्पादित करने के दूसरे नमूने भी हो सकते हैं जिनका सच वही नहीं होता है जो सामने दिखता है। मैकाले एक साफ-सुथरी छवि का चेहरा था जिसे राजसत्ता ने इस्तेमाल किया। अन्यथा जिस तथ्य को जानने और विध्वन्सक योजना बनाने के अब्बे डूबोज नाम के पादरी को तीस वर्षों का सश्रम समय लगा, उस तथ्य को इतनी आसानी से मैकाले कैसे जान लेता। वस्तुत: अब्बे डूबोज 1792 ई. से 1823 ई. तक भारत के दक्षिणी भाग में रहा। उसने गाँव के झोपड़ी में रह कर लोक जीवन का अध्ययन किया। अपने अध्ययन के विवरणों के आधार पर उसने 'हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमानीज' नाम से किताब तैयार की और उसे आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस में प्रकाशित करवाया। डूबोज इस नतीजे पर पहुँचा था कि भारत की समाज व्यवस्था में ही वह शक्ति संरचना है जिसके कारण इस देश को विश्व के इतिहास में

अद्वितीय प्रतिष्ठा मिली। वह अपनी किताब में लिखता है, 'उनकी यह व्यवस्था हजारों वर्ष की परीक्षा में भी सफल उतरी है और विश्व के इस भाग में अनेक उलट-फेर तथा परिवर्तनों के बाद भी यह दीर्घ काल से जीवित बनी रही'। (पृ. 36-37)। डूबोज ने अपने मूल्यवान विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'इनकी नई पीढ़ी बनाने के लिए उन्हें नास्तिक और जंगली गँवार बना कर इनकी सभ्यता, धर्म, राज्य व्यवस्था के आधार को ही नष्ट करने के कार्य करने से अपना कार्य होगा। इस प्रकार भयंकर उलट-फेर पूरा करने के बाद शायद हम इसके लिए विधि-विधानकर्त्ता और धर्मगुरू बन सकते हैं। इस पर भी हमारा कार्य आधा होगा। जिस जंगलीपन, अराजकता, नास्तिकता के गहरे गर्त में हम इन्हें ढकेल देंगे, उसमें से इन्हें बाहर निकालकर इन्हें नए विधि-विधान, नई राज्यव्यवस्था, नया धर्म देकर भी इन्हें नई प्रकृति और भिन्न-भिन्न प्रकार की नई प्रवृत्तियाँ देना हमारे लिए बाकी रह जाएगा (पृ. 96)। डूबोज की किताब छपने के बारह वर्ष बाद युवा मैकाले की जुबान हिली। इसलिए डूबोज के परिश्रम के लिए मैकाले को याद नहीं किया जाना चाहिए।

प्लासी विजय (1757 ई.) के बाद लगातार ऐसी कोशिशें होने लगी थी कि भारत का बौद्धिक गौरव ध्वस्त कर दिया जाए। इसके लिए केवल मैकाले जिम्मेदार नहीं है। अंग्रेजों के भारत में राज्य विस्तार के लिए पहले के आक्रांताओं की सफलताओं-विफलताओं पर विचार किया था। पुर्तगालियों के वे संबंधी थे ही, 1992 ई. में पुर्तगाल की राजकुमारी चार्ल्स द्वितीय से ब्याही गई थी। मुम्बई अंग्रेजों को दहेज में मिली थी। पुर्तगालियों की बर्बरता के कारण भारत में प्रतिरोध और उनके राज्य का विस्तार नहीं हो पाया, अँग्रेज मीठे जहर की गोलियाँ देने के पक्ष में थे। लेकिन उद्देश्य में अन्तर नहीं था। इसलिए अब्बे डूबोज को उसके काम का खुला श्रेय मिला। मैकाले के परामर्शों के पीछे आक्रांता शक्तियों द्वारा अपनायी गयी सैंकड़ों वर्ष की दमनकारी गतिविधि का संचित अनुमान था।

पश्चिमी बौद्धिक साम्राज्य के इतिहास-प्रवाह के सतत संघर्ष करती भारतीय ज्ञानधारा भी प्रवाहित होती रही। लेकिन, पश्चिम के ज्ञानेदेय, औद्योगिक क्रांति, और आधुनिक युग के प्रभाव में संसार का अधिकतम हिस्सा डूब गया। यह दावा अनुचित नहीं होगा कि पश्चिम के ज्ञानोदय और आधुनिक युग के विकास की नींव में भारतीय ज्ञान की अनेक शिलाएँ पड़ी हुई हैं। भारत के प्राचीन शिक्षालयों के योगदान की चर्चा

इस प्रसंग में न की जाए तब भी उदाहरण के लिए यह कहना जरूरी है कि पश्चिम को गणित का ज्ञान तब हुआ, जब उज्जैन के पंडित कंक 770 ई. में अब्बा सईद खलीफा अलमंसूर के बुलावे पर बगदाद पहुँचे और उन्होंने अत्यन्त विकसित खगोलीय गणित की पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त का अरबी में अनुवाद करवाया और वहाँ गणित की शिक्षा दी। इसके बाद भारतीय अंकों का ज्ञान अरब से मिस्र और उत्तर अरब होते हुए ग्यारवहीं शताब्दी में यूरोप के हिस्से आया। इस प्रकार के अनेक मौलिक ज्ञान जो अघोषित रूप से आधुनिक युग के आधार बने, उनका मूल स्रोत वेद है। तथापि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव में भारत के पारंपरिक ज्ञान के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है और पश्चिम का अंधयुग भारत के सिर पर आ गिरा है जबकि आज भी यूरोप भारत के ज्ञान और ज्ञानियों का दोहन अपनी समृद्धि के लिए करता है।

आज आधुनिक युग का सार्वभौमिक वर्चस्व पश्चिम में टूट रहा है, उत्तराधुनिक विचारक आधुनिक युग के अन्त की घोषणा कर चुके है– दरिदा, केलनर, हार्वे, बोगार्ड, जोमेसन, ल्योतर इत्यादि अनेक उत्तराधुनिक विचारकों ने दुर्खाइम, मेक्स बेवर, पार्सस, मार्टन इत्यादि द्वारा दिये गए आधुनिक युग के विकास पोषक विचारों के अनुपयोगी माना है। उनका आरोप है कि आधुनिक युग के सौ वर्ष मनुष्य की बदहाली के दिन थे, खुशहाली के नहीं। विज्ञान को मनुष्य का उद्धारक बताने वाले आधुनिक युग के विचारों को ल्योतर ने व्यर्थ कहा है। ल्योतर क विचार विज्ञान के सर्वनाशी चरित्र उभरने के बाद तर्क संगीत प्रतीत होते हैं। ल्योतार मानते हैं कि यूनीवर्सिटियां किसी मायने में ज्ञान का विकास नहीं करतीं। आज की परिस्थितियों में ज्ञान बेचने के लिए कमाया जाता है, इसीलिये शैक्षिक संस्थाएँ भी कार्य कौशल पर जोर दे रहे हैं। जब कोई विद्यार्थी नया अविष्कार करता है, उससे पूछा जाता है कि उसके कार्य की उपयोगिता क्या है? उसका आर्थिक महत्व क्या है। यह कहना उचित होगा कि आर्थिक शक्तियों के दबाव में ज्ञान की सत्ता पराधीन हो चुकी है। भौतिक विकास की दौड़ में ज्ञान की उपयोगिता को महत्व दिया जा रहा है। ज्ञान का तकनीकी रूपांतरण जरूरी समझा जा रहा है। इसी के साथ शिक्षा–संस्थाओं का बाजारीकरण होता जा रहा है, मशीनों द्वारा ज्ञान की बैंकिंग हो रही है। अब ज्ञान सम्पदा तक वही पहुँच सकेगा, जिसके पास पैसे होंगे। शिक्षा के बाजारीकरण और दुष्प्रभावों से सर्वत्र चिन्ता फैल रही है। जिसके पास धन है वही कमाई वाले ज्ञान अर्जित कर सकता है, प्रबंधन, चिकित्सा प्रौद्योगिकी क्षेत्रों की शिक्षा उद्योग बन चुकी है। यह शिक्षा मनुष्य को धनपशु बना देती हैं धनपशु कम्पनियों के

हाथों बिक सकता है। कम्पनियाँ प्रकृति-पर्यावरण के विरुद्ध कार्य कराने में उसकी जीवनी शक्ति को व्यय कर सकती हैं। तुलसी दास की पंक्ति- (कवितावली)-प्रासंगिक हो गई है:

पेट को पढत गुन गढत चढ़त गिरि-
अटत गहन गन अहन आखेट की।
ऊँचे नीचे करम धरम करि पेट ही को-
पचत बेंचत बेटा-बेटकी।।

पेट के लिए पढ़ना सबकी मजबूरी बनती जा रहा हैं। इस दशा के लिए किसी व्यक्ति को दोष नहीं दिया जा सकता। मनुष्य की प्रतिभा और उसकी मनोगत त्रिक शक्तियाँ स्वेच्छा कर्म में व्यय नहीं हो रही, उसे किसी की हस्ती का समान बनना पड़ता है। अनात्म कर्म करने के लिए विवश होना पड़ता है।

इतिहास की गहन-गंभीर घेराबंदी के भेदन की सूझ देने वाले नासदीय सूक्त की दूसरी ऋचा में सृजनप्रक्रिया की चरणों की चर्चा की गई है। 'जब न मृत्यु थी न अमृत, न रात भी न दिन, तब वात रहित दशा ने स्वधा से प्राण खींचा।' स्व की धारणा से ही पहली हलचल पैदा होती है जिससे सजीव होने वाले प्रमाण मिलता है। स्वत्व के जाग पर तम का बोध और प्रकाश की ओर जाने की व्याकुलता उत्पन्न होती है। इससे ताप प्रकट होता है, जिससे जड़ तमस में सलिल-उर्मियां उठने लगती हैं। महिमा उद्‌बुद्ध हो उठती है और तब मन की ऊर्जा से कामना उचित होती हुई पूर्व दिशा से आगे बढ़ने लगती है। इस प्रकार तम से सत निर्बन्ध होने लगता है। असृष्ट नासदीयता से मुक्ति के लिए स्रष्टा कवि के हृदय में प्रति एषणा होने लगती है और उसकी मनीषा सृजन प्रवृत्त हो उठती है। ऊपर-नीचे सर्वत्र फैलने लगती हैं-सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हति प्रतीष्या कवयो मनीषा (ऋ. 10/129/4)। सृजन की प्रक्रिया में स्वधा का आधार लेकर प्रयत्न ऊपर उठता है। नासदीयता के विरूद्ध होने वाली सृष्टि को सूक्त में विसृष्टि से प्रेरित मानुषी सृजन भी इतिहासी अवरोधों को रौंद कर उसके विरूद्ध खड़ा होता है, स्वत्व का आधार लेकर प्रयास करता है, उल्टी धारा बहा देता है। सृजन की स्वतंत्र सत्ता तभी प्राप्त होती है।

शिक्षा जगत की नासदीयता के अंत और सतत सृजन के लिए हमें निजी बौद्धिक इतिहास सामने रखना होगा। इसके बिना स्वतंत्र मानस का उदय नहीं हो सकता। वेद ज्ञानी की सर्वोपरि स्वतंत्र सत्ता की घोषणा करता हैं क्योंकि ज्ञानी सारे विश्व को तटस्था

दृष्टि से देखता है, परिस्थितियों का विश्लेषण करता है। ज्ञानी की पवित्र कर्मों से ही समाज की कायिक, मानसिक और बौद्धिक समृद्धि होती है। सच्चे कर्मों का संरक्षक, स्वयं उत्तम कर्म करने वाला किसी के कभी दबता नहीं, अपितु वह दष्कर्मियों को दण्डित करता है, उन्हें उचित मार्ग में प्रवृत्त करता है।

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरादधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुनवाभिपश्य त्यवा जुष्टान विघ्यति कर्ते अव्रतान।।
(ऋ. 9/73/8)

ज्ञानी को यह अधिकतर राजशक्ति अथवा किसी बाह्यशक्ति-सामर्थ्य द्वारा प्राप्त नहीं होता। उसे सर्वोपरि होने का अधिकार उसके जीवन की विशिष्टता से प्राप्त होता है। ज्ञानी सर्वत्र एकत्व देखता है उसे मोह और शोक नहीं होता-तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनु पश्यतः (यजु. 40/4)। ज्ञानी की स्वतंत्र सत्ता प्रतिष्ठित होने के कारण भारत के बौद्धिक इतिहास में कभी किसी कोपर्निकस को दण्डित नहीं किया गया। कोपर्निकस से सैकड़ों वर्ष पूर्व जब आर्यभट्ट ने पृथ्वी केन्द्रित खगोलीय परिभ्रमण को खंडित कर सूर्य केन्द्रित परिभ्रमण की स्थापना की, उन्हें सम्मान मिला। विविध ज्ञान स्रोतों को विकसित करने वाले ज्ञानियों की प्रतिष्ठा इसलिए होती रही है कि स्वयं वेद की ऋचाएँ अन्तिम सत्य को अन्तिम वाक्य में नहीं कहतीं। उसके कहने का अंदाज अनोखा है- 'यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई, वही इसे धारण करता भी है या नहीं? परम व्योम में रहने वाला इसका अध्यक्ष जानता है अथवा वह भी नहीं जानता'—

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परम व्योमन्त्सो अंगवेद यदि वा न वेद।।
(ऋ. 1/129/7)

अन्तिम वाक्य में अन्तिम सत्य को स्थापित करने से ज्ञान की खोज ठहर जाती है, राज्य व्यवस्था धर्म तंत्र का उपयोग करने लगती है। इसके बाद ज्ञान की सत्ता सर्वोपरि नहीं रहती। वास्तविक ज्ञान राजसत्ता के अधीन नहीं, विश्वभुवन पर राज करने वाली परम सत्ता के अधीन रहता है। ज्ञानी की स्वतंत्र सत्ता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कणाद ने खेतों में झरे हुए अन्न चुन कर अपनी भूख मिटायी। वे किसी के अधीन नहीं हुए। इसीलिए उनके द्वारा जानी गई परमाणु शक्ति का दुरुपयोग नहीं हुआ। वे किसी के अधीनस्थ नहीं थे। किन्तु आइंस्टीन चाहकर भी अपने ज्ञान के ध्वसंक इस्तेमाल को रोक नहीं सकते थे।

ज्ञान सूक्त के नाम से ख्यात ऋग्वेद का एक सूक्त (10/71) हमें बतलाता है कि ज्ञान सोपानिक होता है-सामान्य ज्ञान से ब्रह्मज्ञान तक, स्थूल से सूक्ष्मतम स्तरों तक। और जहाँ तक ज्ञान है वहाँ तक वाग् है। वाग् के सहयोग से ही ज्ञान में प्रवृत्त हुआ जाता है। पदार्थ परकज्ञान ज्ञान का पहला सोपान है- जैसा देखा, बोल दिया-नामधेयं दधाना:। सूक्त कहता है कि बाहरी ज्ञान में भी गहरा ज्ञान छिपा होता है। वह पेरने से प्रकट होता है- प्रेणा तदेषां निहितं गुहावि:।

पदार्थ के गुण-धर्म जानने के लिए उसकी सूक्ष्म दशा में प्रवेश करना होता है। यह ज्ञान का दूसरा सोपान है। ज्ञान को उचित शब्दों में सर्वहित के भव से व्यक्त करने का परामर्श देती हुई सूक्त की एक पंक्ति सचेष्ट करती है कि वचन में लक्ष्मी निवास करती है। अत: कथनीय-अकथनीय का विवेक आवश्यक है- लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि। तीन जागतिक स्तरों की चर्चा करने के बाद ज्ञान के चौथे सोपान पर सूक्त ने यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले ऋषि प्रदत्त वचनों को रखा है। यज्ञ के वचन (मंत्र) प्रज्ञावान को ही प्राप्त हो सकते हैं- यज्ञेन वाच: पदवीयमायन। इसे सुनकर भी सुना नहीं जा सकता- उतत्व: शृण्वन न शृणोत्येनाम्। यह ज्ञानवती वाणी सव्यं प्रकट होती है। जैसे पत्नी सुन्दर वस्त्र में सज धज कर स्वयं अपने पति के सम्मुख पहुँचती है। ऐसी ज्ञानवती वाणी सर्वश्रेष्ठ बना देती है। ज्ञान का महत्व बताते हुए सूक्त कहता है कि जो वेद जैसे मित्र को छोड़ देता है उसकी वाणी फलहीन हो जाती है। वह जो भी सुनता है, व्यर्थ सुनता है- ईम् यत् शृणोति अलकं शृणोति, वह सुकृत्य का मार्ग नहीं जानता-हि सुकृतस्य पन्थां न प्रवेद।

ज्ञान के भेद से मनुष्यों में अन्तर होता है। सूक्त कहता है लेकिन 'सभी लोगों में समान इन्द्रियाँ तो हैं लेकिन समान रूप से ज्ञान नहीं है। जलाशय की गहराई की भाँति मनुष्यों में भी ज्ञान की गहराई होती है, किसी में मुँह तक, किसी में कण्ठ तक और किसी में काँटे तक। एक समान ज्ञानवालों में भी अलग विषयों की गति होती है। एक समान ज्ञान और विषयों को जानने वाले एक साथ ज्ञान के आकाश में विचरण करते हैं। लेकिन, जो उस विषय को नहीं जानता, वह जहाँ था वहीं रह जाता है'। ज्ञानसूक्त ज्ञान को चार स्तरों में बाँटता है। पदार्थ विषयक ज्ञानों के तीन स्तर हैं। इनसे भौतिक समृद्धि का संबंध है। लेकिन ज्ञान के चौथे सोपान पर ज्ञानवती वाणी स्वयं प्रकट होती है। इस ज्ञान स्तर में ज्ञाता और ज्ञेय एकाकार हो जाते हैं- याऽसावसौ पुरुष: सोऽहमस्ति (यजु. 40/16)। जो सर्वव्याप्त अविनाशी पुरुष है, वहीं मैं भी हूँ। मैं वही हूँ जो सारा

विश्व है। प्राणियों और समस्त सृष्टि में एकात्मता के दर्शन से मनुष्य के सारे कर्म सृष्टि के अनुकूल होने लगते हैं। वह सर्वज्ञ हो जाता है। ऐसा ज्ञानी यज्ञमय होता है। इस सर्वोपरि ज्ञान के अनुसरण में रहकर पदार्थिक ज्ञान के तीनों स्तर अपकर्मों से बच सकते हैं। जब पदार्थिक ज्ञान और उसके द्वारा अर्जित भौतिक समृद्धि क्लेश का कारण बन जाती है तभी अनेक विषमताओं और उत्पातों से जीवन संत्रस्त होने लगता है। तब वह ज्ञान की सर्वोपरि सत्ता के अनुशासन में आकर सार्थक हो सकता है। क्योंकि सर्वोपरि ज्ञानसत्ता और परमसत्ता एक समान होती हैं:

यज्ञा यज्ञा वः समना तुतुर्वाणिर्धियं धियं वो देवया उदधिध्वे।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रादस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः।।

(ऋ 10/968/1)

'प्रत्येक कर्म में तुम्हारे मन का समभाव त्वरित सेवा करने वाला है। प्रत्येक विचार दैवी सामर्थ्य पाने की इच्छा से ही धारण करते हो। आकाश और पृथ्वी की सुव्यवस्था के लिए, सबके पूर्ण रक्षण के लिए श्रेष्ठ मार्ग से तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता हूँ।' अर्थात् ज्ञान की सर्वोपरि सत्ता का प्रयोजन स्वार्थ में नहीं, परमार्थ में प्रकट होता है। वही त्रिगुणात्मक जगत का नियामक है।

जिस प्रकार ज्ञान सूक्त द्वारा ज्ञान का वर्गीकरण किया गया है, ज्ञान से अभिन्न वाग् की भी चार अवस्थाएँ बतायी गयी हैं। वाग् से ही सृष्टि प्रारंभ हुई है। परावाग् के बाद पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी तीन व्यक्त वाग् हैं। इन्हें ऐन्द्र वाग् भी कहते हैं। इन्हें इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है। परावाग् मूल है। इसके तीन स्तरों- वायव्या, दिव्या, और अमृता का उल्लेख मिलता है। परावाग् इन्दियों से परे है। इसमें रस, रूप और गंध इत्यादि पंचतन्मात्राएँ नहीं होती। यह पंचभूतों को धारण करता है। यही घनीभूत होकर इन्द्रिय ग्राह्य बन जाता है यही प्राण है। प्राण ही परामाणुओं को जोड़ता है जिससे अस्तित्व बना है। वाग् रूप प्राण के भेद ऋषि, देव, पितृ आदि हैं। शतपथ ब्राह्मण का वचन है- 'असद्वा इदमग्र आसीत। किं तदसदासीदिति। ऋषयो वा वातेऽग्रऽसदासीत्। केते ऋषय इति प्राण वा ऋषयः।' प्रारंभ में क्या था? यह सारा सृष्टि-प्रपंच असद था। असद क्या था? ऋषि। ऋषि ही प्राण है।' प्राण को असद् कहा गया है। प्राण की शुद्धतम दशा असद है। यही भौतिक पदार्थों का जनक है। प्राणवान पदार्थ सद है। वाग् और प्राण की अभिन्नता के कारण प्रत्येक प्राणी में वाग् है और ज्ञान भी। क्योंकि ज्ञान वाग् का संगी है। प्रत्येक प्राणी को एक ज्ञान पिण्ड समझा जाता

है- एक विद्या माना जाता है प्रत्येक प्राणी एक छन्द है, ध्वनि है। उसमें प्रकृति का रहस्य निहित है। सृष्टि भीतर से एकात्म है, बाहर से विविध रूप में। वाग् के चार स्तर नपे-तुले हैं। इसे ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं इनमें सक तीन वाग् गुहा में निहित हैं। वे प्रकट नहीं होते। मनुष्य वाणी का चौथा रूप ही बोल पाता है:

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मण ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

(ऋ. 1/164/45)

वेद का ज्ञान छन्दस् है, सोपानिक है। यह सृष्टि से अभिन्न है वेद के ज्ञान और वाणी में गहराई है, ऊँचाई है, विस्तार है। यह बहुआयामी है, सपाट नहीं। प्राणी की चेतना जिस स्तर की होगी, उसमें उसी स्तर का ज्ञान होगा और उसी स्तर का वाग्। प्रत्येक प्राणी के मन, प्राण, वाग् है। सबमें त्रिकशक्तियाँ निहित हैं। मन का समुद्र खनती से खोदकर उस त्रयी विद्या को जाना जा सकता है जिसे देवों ने लोक में व्याप्त किया है- मन समुद्र: वाक् तीक्ष्णाभ्रि: त्रयी विद्या निर्वपणम्-(शतपथ, 7/5/2/52)

मनुष्य के भीतर ज्ञान है-
पास ही रे! हीरे की खान। खोजता कहाँ और नादान।। (निराला)

मनुष्य की चेतना जितनी जगेगी उतना ज्ञान प्राप्त होगा- 'तुम जागोगे तो ऋचाएँ तुम्हारी कामना करेंगी। तुम जागोगे तो यजु., साम., अथर्व तुम्हारे सखा होंगे। ये जिसका साथ देते हैं उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता-

यो जागार तमृच: कामयन्ते, यो जागारतमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह, तवाहमस्मि सख्ये न्योका:।।

वेद का ज्ञान नैगर्सिक ज्ञान है। यह मनुष्य के अन्त:करण से लेकर सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए विशेष आचार में रहकर तप करना आवश्यक समझा जाता है। यह ज्ञान केवल कहने-सुनने के लिए नहीं होता, इसकी प्राप्ति प्रत्यक्ष प्रमाण और आचरण बन जाती है। ऋषि शौनक मेघा का आवाहन करते हुए कहते हैं, 'देवत्व धारण करने वाली हे मेघे! आप हम सबकी प्रथम पूज्या हैं। आप गौओं-अश्वों सहित हमें प्राप्त हों। सूर्य रश्मियों की भांति सर्वव्याप्त शक्ति सहित आप हमारे पास आएँ-

त्वं नो मेघे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया।।

(अथर्व, का; 6 सू. 108-1)

मानसिक प्रकाश मेघा है। इस प्रकाश में यज्ञ की रचना है, सृजन की क्षमता है। यह सभी ग्लानियों को भस्म कर देती है। और नवीन सृजन का उत्साह भर देती है। ऋषि का वचन है, 'आप गौओं और अश्वों सहित हमें प्राप्त हों।' गौ गोचर बनाने वाली शक्ति है। यह दृश्य है, दिक् है और अश्व वेगवान काल है (कालो अश्वा वहति सप्त रश्मिभि:)। सूर्य की रश्मियों में दिक् काटर काल दोनों है। मेघा में भी दिक् और काल दोनों है। मनुष्य मस्तिष्क में दिक् और काल का विस्तार मेघा से होता है। मेघा ही सृजनशील बनाती है। इस शक्ति से मनुष्य अपना इतिहास बना सकता है और राजसत्ता के इतिहास को प्रभावित कर सकता है।

मेघा सृष्टि-यज्ञ की अग्नि है, जिससे ऋषियों, पंच महाभूतों, पृथ्वी आदि सृष्टि के अंगों की रक्षा होती है। गायत्री मातृक वेद मेघा की मूर्ति है। सविता की शक्ति से जुड़ते ही मनुष्य प्रज्ञावान बन जाता है। सायं, प्रात: मध्याह्न की त्रिकाल संध्या द्वारा मेघा का जागरण होता है। सूर्य के प्रकाश में परिक्रमण करती पृथ्वी पर बनने वाले काल छंद से योग होते ही मनुष्य मस्तिष्क में बड़े दिक् और काल का उदय होता है।

मेघां सायं मेघां प्रातर्मेघा मध्यन्दिनं परि।
मेघां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशया महे।।

(अथर्व. 6/108/5)

मेघा विभिन्न प्रवृत्तियों का मूल स्रोत हैं यही कर्म की प्रेरक है। मेघा की स्तुति करते हुए ऋषि ने सृष्टि निर्माता देवों की मेघा के साथ-साथ असुरों और ऋषियों की मेघा को स्मरण किया है। देवों की मेघा ऊर्ध्व अमृत लोक में, असुरों की मेघा अधो मृत लोक में और ऋषियों की मेघा इन दोनों के मध्य मृतामृत लोक में कार्य करती है। विद्या और अविद्या के मध्य ऋषियों द्वारा स्थापित जीवन पथ है।

जैसे सृष्टि छन्दस् और प्राणवान है, वेद मंत्र भी छन्द्स और प्राणवान है। सृष्टि और वेद एक समान सात छन्दों में व्यवस्थित है-तां सप्त रेभा: अभि सं नवन्ते। इसलिए जब वेदज्ञ वेद मंत्रों का उच्चारण करता है, वह सृष्टि को ही उच्चरित कर रहा होता है। वेद मंत्रों के छन्दाकाश में अक्षर परमात्मा वास करता है। उसमें सभी देव शक्तियाँ

स्थित होती हैं। परन्तु जो परम तत्व को जानता नहीं चाहता, उसके लिए ऋचाएँ क्या कर सकती है? हाँ, जो जानना चाहता है उसे ज्ञान के उच्च शिखर पर अवश्य बैठा देती हैं–

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् अस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृच्चा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते।।
(ऋ. 1/164/39)

यजुर्वेद का वचन है– 'यज्ञ में आवाहित परमसत्ता से ऋग्, यजु. साम और अथर्ववेद उत्पन्न हुए–

'तस्मादय ज्ञात् सर्वहुतः ऋचासामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमात् जायत।।' (31/7)

कृत्रिम यज्ञ से वेद प्रकट नहीं हुए। जिस यज्ञ से वेद प्रकट हुए, उसकी अग्नियाँ मनुष्य देह में प्राणाग्नि बनी हुई हैं। वर्णों की उत्पत्ति इन्हीं अग्नियों से होती है। सोलह स्वर वर्ण चन्द्रमा से, चौबीस व्यंजन वर्ण सूर्य से, आठ वर्ण पृथ्वी से उत्पन्न होते है। और बिन्दु रूप 'म' वर्ण स्थानिक है। शब्द ब्रह्म का आविर्भाव सूर्य–चन्द्र–पृथ्वी मंडलों से हुआ है। इन्हीं से ज्ञान और व्यवहार की भाषा का विस्तार भी हुआ है। परमसत्ता के रूप में यज्ञ पुरुष श्रीकृष्ण ने कहा–चन्द्र–सूर्य–अग्नि (पृथ्वी) में निहित तज मैं ही हूँ। मुझमें अखिल जगत भासमान हो रहा है–

यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।। (गीता–15/12)

इन्हीं तीन अग्नियों का प्रत्यक्ष आधार वेद की ज्ञानाग्नि अनंत ज्ञान की यात्रा करवाती है। अनेक वेदमंत्रों ने विश्व के ज्योतिर्रूप को प्रत्यक्ष देखा और पाया है। इन मंत्रों से मनुष्य सम्पूर्ण विश्व से आत्मीय संबंध अनुभव कर सकता है।

ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त (1/164) में विश्व–ब्रह्माण्ड की अलौकिक संरचनाओं का ऐसी संवादी भाषा में उद्घाटन हुआ जिसके सामान्य शब्दार्थों के परिचय से भी मनुष्य का मानस ज्ञान से झंकृत हो सकता हैं। इस सूक्त की वाणी कौतुहल और जिज्ञासा से व्याकुल कर देती है। इसका उद्देश्य यह है कि मनुष्य को विश्व–ब्रह्माण्ड का परिचय प्राप्त हो। वह अपने कर्मों को सुव्यस्थित कर सके।

न केवल अपनी धरा–देह से अपितु ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अंग से अनुराग रख सके।

विश्व-देवताओं को समर्पित दस सूक्त की प्रथम ऋचा अत्यन्त सुन्दर भावों से सर्वपालक सूर्य, सर्वव्याप्त अन्तरिक्ष और घी की तरह चिकने पीठ वाले भूमंडल को बड़ा, मझला और छोटा भाई बतलाती है। सूक्त का दसवाँ मंत्र जिज्ञासु को ज्ञान के विस्तृत फलक पर ले जाता है परन्तु, यहाँ भी आत्मिक भाषा प्रयुक्त हुई है। जैसे कोई गाँव-घर की सामान्य सी बात हो। पोते की नजर से देखें ऐसा लगेगा कि विश्व परिवार के आदि पुरुष प्रजापति बूढ़े दादा है, वे अकेले रहते हैं। परिवार में तीन माताएँ (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) और तीन पिता (अग्नि, वायु एवं द्यु:) हैं। दादा इनका भरण-पोषण करते हैं फिर भी इनमें लिप्त नहीं रहते, इन सबसे ऊपर रहते हैं। इसीलिए उनकी संतानें उन्हें दुखी नहीं कर पातीं। उनकी वाणी समस्त विश्व को भली भाँति जानती है, परन्तु वह विश्व से परे रहती है। सभी सदस्य द्युलोक के पृष्ठ पर पहुँच कर उनके कथनों पर विचार करते हैं। याज्ञिक कालबोध और विश्व-ब्रह्माण्ड की ज्योतिसंरचना बतलाने वाला यह सूक्त गहरे ज्ञान से भरा हुआ है। पर इसकी भाषा ज्ञान को दृष्टिगोचर बना देती है। काल और रश्मि-तन्तुओं के रचे-बुने विश्व का वर्णन करने वाले इस सूक्त से ज्ञात होता है कि द्युलोक में बारह अरों वाला चक्र निरंतर घूम रहा हैं वह कभी पुराना नहीं पड़ता। सौर वर्ष का उल्लेख करने के बाद सूक्त का ग्यारहवां मंत्र अग्नि को सम्बोधित करते हुए सात सौ बीस जोड़े पुत्रों के हमेशा बने रहने की चर्चा करता है। इस चर्चा द्वारा प्राणवान विश्व काया का परिचय मिलता है। यह चान्द्र वर्ष की रश्मियों का वर्णन है। चन्द्रमा के एक भाग पर दिखने वाली तीन सौ आठ अहोरात्रियों वस्तुत: आधी हैं, उसके दूसरे भाग पर भी इतनी ही अहोरात्रियाँ होती हैं जो द्युलोक की ओर दृष्टिगोचर होती है। पृथ्वी और द्युलोक की ओर चन्द्रमा के दो प्रकाश वृत्त हैं, जिनकी अहोरात्रियों का योग सात सौ बीस होता है। इस रश्मि क्रीडा को यांत्रिक दूरबीन नहीं दिखा पाते। विश्व देवता का स्वरूप चित्रित करते हुए बारहवें मंत्र में द्युलोक के आधे भाग में रहने वाले सूर्य को छह ऋतुओं के रथ पर विराजमान बताया गया है। पाँच काल विभागों को सूर्य के चरण और बारह मासों को उनकी बारह आकृतियाँ बताया गया हैं सूक्त का अठारहवाँ मंत्र पूछता है- कोई ऐसा ज्ञानी है तो द्युलोक के पोषक के नीचे पृथ्वी का पालन-पोषण करने वाली अग्नि को जानता हो, पृथ्वी के ऊपर द्युलोक के पोषक सूर्य को जानता हो और दोनों के बीच स्थित विश्वकाया के मन चन्द्रमा को जानता हो? यदि कोई है तो आगे आकर हमें बताए।

वेद का ज्ञान वेद की भाषा और अखिल जगत तीनों अभिन्न हैं।

वेद का प्राचीनतम ज्ञान प्राचीनतम भाषा में उपलब्ध है। मीमांसाकार जैमिनि ने शब्द को नित्य कहा है। उनका कथन है- 'शब्द और शब्दार्थ उत्पन्न नहीं किए जाते। इनकी सत्ता उच्चारण के पूर्व भी है।' यह कथन वेद के विषय में अक्षरश: सत्य है। अत: वेद मंत्रों का भाषान्तरण संभव नहीं है। महर्षि यास्क का मत है कि वेद मंत्रों के तीन अर्थ भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक होते हैं। ऋषि ने जिस अभिप्राय से किसी देवशक्ति की स्तुति की है, वह उस देवता तक केन्द्रित होता है। पर, इसके तीन भेद है- परोक्ष, प्रत्यक्ष और आध्यात्मिक-तास्त्रिविध: परोक्षकृता प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिक्यश्च। (निरूक्त 1-1)।

इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता है कि तपस्या से प्राप्त निर्मल दृष्टि से वेद मंत्रों के अनेक अर्थ प्रकट होते हैं-तपसा मंत्राणामनेकेऽर्था: भवति।

वेदाध्ययन से पूर्व पाँच देवताओं को स्मरण करना आवश्यक होता है- गणों के नाथ गणपति, सरस्वती, सूर्य, शुक्राचार्य और वृहस्पति इन पाँच देवताओं के स्मरण के बाद देववाणी प्रारंभ की जाती है- गणनाथ सरस्वती रवि शुक्र बृहस्पतिन्। पंचैतान् संस्मरत्रित्यं वेदवाणी प्रवर्तयेत्।। (सम्प्रदाय प्रबोधनी शिक्षा लो. 23)। इस पाँचों में शुक्र और वृहस्पति असुरों और देवताओं के गुरु हैं। शुक्र भृगु कुल के हैं और बृहस्पति अंगिरस वैदिक सृष्टि विज्ञान के मूल तत्व हैं। वरुण तेज से उत्पन्न भृगु को भृगु वारूणि भी कहा गया है। भृगु सोमात्मक हैं। और अंगिरस आग्नेय। इनसे 'अग्नि सोमात्मक' जगत की उत्पत्ति होती है। भृगु और अंगिरस के योग से अथर्व बना है। अर्थव का लोक आप: है। आप: में अनायतन दिक चन्द्रमा व्याप्त रहता है, जिसे सोम कहा जाता है। आप: वायु और दि्क चन्द्र तीनों भृगु स्वरूप हैं। पृथ्वी का परिभ्रमण करनेवाला चन्द्रमा भास्कर चन्द्र कहा गया है। यह अत्रि प्राण का घनीभूत रूप है। वेद विज्ञान के भाष्यकार पं. मधुसूदन ओझा ने 'महर्षि कुल वैभव' नामक ग्रंथ में ऋषि प्राणों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए लिखा है कि आपके वरण से निर्मित हुए वरूण ब्रह्मरेत मुक्त हुए। उन्हें प्रजापति ने अभितप्त किया। उनके अंगों के रस से आग्नेय अंगिरस की उत्पत्ति हुई। अग्नि होने के कारण अंगिरस ऊपर की ओर गति करता है। सूर्य प्राण और अंगिरस प्राण में हमेशा होड़ लगी रहती है कि द्युलोक में कौन पहले पहुँचता है। अंगिरस त्रिवृत्त है। यही अग्नि की तीन अवस्थाओं-अंगार, लपट और प्रकाश में दिखता है। अग्नि, आदित्य और यम तीनों अंगिरस हैं। अंगिरस प्राण से स्मृति प्राप्त होती है भृगु प्राण से ख्याति और श्री। शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ के अनुसार ऋषि को तत्व, प्राण, वश तारा

इत्यादि रूपों में व्याख्या दी गई है। बताया गया है कि सृष्टि पूर्व असत् दशा में प्राण रूप ऋषि व्याप्त थे जो सृष्टि प्रपंच द्वारा मूर्त हुए। छह ऋतृओं में यही गतिमान है। जैसे छह ऋतुओं की एक-एक ऋतुएँ दो-दो मास की हैं। ऋषि प्राण भी जोड़े में होते हैं। लेकिन सातवाँ ऋषि अधिमास की भांति एकाकी है। ऋतुओं को पितर कहा गया है-ऋतव: पितर: (शत: 2/6/1/42) और पितरों की उत्पत्ति ऋषियों से बतायी गई है। यह उल्लेख मिलता है कि शरीर के चारों भागों - शिरो गुहा, उरोगुहा, उदर गुहा और बस्ती गुहा और बस्ती गुहा की रचना भी सात-सात प्राणों से हुई है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है-

'प्राणों वै वसिष्ठ ऋषि:, मनो वै भरद्वाज ऋषि, चक्षु वै जमग्नि ऋषि:
श्रोत्र वै विश्वामित्र ऋषि:, वाग् वै विश्वकर्मा ऋषि:।

इस कथन से स्पष्ट होता है कि मनुष्य काया के शक्ति स्रोतों में ऋषि प्रमाण प्रतिष्ठित है। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि पाँच महाभूत, आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति तैंतीस देवाताओं के सम्पूर्ण जगत की रचना हुई है। इस प्रकार वैदिक प्रज्ञान द्वारा ऋषि और देवता के ताने-बाने से बुने विश्व भुवन का दर्शन होता है, जिसमें प्रत्येक अस्तित्व प्राणवान है और प्रत्येक प्राणी ज्ञानवान।

सूर्य वेद अध्ययन का केन्द्र है। सूर्य में त्रयीविद्या (ऋक्, यजु., साम.) तपती है। गायत्री मातृका वेद सूर्य में निहित है। यह प्राणों को आगार है। इसी से सभी प्राणी प्रसूत हुए-सविता सर्वस्य प्रसविता। वेद ऋषि ने बड़े कौतुक से कहा है-प्राण, रक्त और आत्मा वाले धरती के प्राणी पहले कहाँ थे? हाड़, मांस के प्राणियों को बनाने वाला तो स्वयं बिना हड्डी का है। उस प्रथम अस्तित्व को किसी ने देखा क्या? यह जानने के लिए कोई ज्ञानियों के पास गया क्यों नहीं? दूसरे मंत्र में ऋषि ने प्राणियों के जैविक अस्तित्व बनाने वाले सात प्रमुख प्राण-तन्तुओं की चर्चा की है ऋ. 1/164/4-5)। सूर्य की सप्त रश्मियों से संबंधित सप्त प्राणों का आधार लेकर आयुर्वेद के शरीर विज्ञान का विकास हुआ है और इसके अनुसार चिकित्सा होती है। वेदाध्ययन में तो सूर्य उपासित होता है। याज्ञवल्क्यीय शिक्षा ने वेद मंत्रों के उच्चारण को सूर्य रश्मियों के कणों में होने वाले कम्पन के अनुसार निर्धारित किया है।

सूर्य रश्मि प्रतीकाशत्कणिका यत्र दृश्यते।
अणुत्वस्य तु सा मात्रा मात्रा चतुराणवा।।1।।

सूर्य रश्मियों के कणों के कम्पन में जितना समय लगता है उसे अणुमात्रा कहते हैं। चार अणु-मात्रा को मात्राकाल कहते हैं। वर्ण का मानसिक उच्चारण करने में मात्राकाल लगता है। कण्ठ से उच्चारण करने में दो मात्राकाल और जीभ से उच्चारण करने में तीन मात्राकाल लगता है। ऋचा के मध्य दो मात्राकाल का विराम और ऋचा के अन्त में तीन मात्राकाल का विराम होता है। रिक्त हस्त के समय हाथ उठाकर दो मात्राकाल दिया जाता है। वेद पाठ में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का उपयोग होता है। इन स्वरों के साथ वर्णों की भावना भी जुड़ी हुई है। उदात्त के साथ श्वेत वर्ण, अनुदात्त के साथ रक्त वर्ण और स्वरित के साथ श्याम वर्ण की भावना करने से वेद पाठ तीनों ज्योतियों से युक्त होकर वाचिक यज्ञ बन जाता है।

सूर्य की सप्त वहि्वयों से सप्त धृत मातृकाओं (अ, क, च, ट, त, प, य) की उत्पत्ति होती है। इन्हीं से वर्णमाला का विस्तार हुआ है। और सूर्य के नाद लयों के अनुसार उदात्त, अनुदात्त, स्वरित क्रम से संगीत के सप्त स्वर बनते हैं। सारस्वन् सूर्य की सरस्वती में सात छंद, सात स्वर, सात वर्ण इत्यादि सप्तक निहित है। वर्ण समूहों के स्वामी गणपति कवियों के कवि हैं, ब्रह्म से भी ज्येष्ठ है इन्हीं से ब्रह्म का बोध होता है-

गणानात्वां गणपति हवाम हे। कविं कविानामुपमश्रवस्तम्।

तैत्तिरीयोपनिषद की शिक्षावली में शिक्षा की व्याख्या करते हुए सर्वप्रथम वर्ण-स्वर, मात्रा-बल, साम-संतान (संधि) का उल्लेख किया गया है। इसके बाद पांच अधिकरणों की महासंहिता चर्चा में आयी है। लोक, ज्योति, विद्या, संतति और अध्यात्म में शिक्षा का सर्वस्व समाहित कर दिया गया है। इन पांच अधिकरणों को बताने के शैली उदात्त, अनुदात्त, स्वरित की भाँति पूरी तरह सांगतिक है जैसे पाठ विषय वाचिक यज्ञ हो। लोक संबंधी संहिता का वर्णन करते हुए बताया गया है कि लोक का पूर्व रूप पृथ्वी, उत्तररूप द्युलोक और इनकी संधि आकाश है। इनका संधान वायु है। इसी प्रकार आचार्य विद्या का पूर्व रूप है अन्तेवासी शिष्य उत्तररूप है, विद्या संधि है जिसके कारण दोनों के संबंध बना है और प्रवचन संधान है। गुरु हो, शिष्य हो विद्या भी हो लेकिन विद्या की लेन-देन ना हो तो प्रयोजन पूरा नहीं होता। अजीब लगता है। जब थीसिस-एन्टी थीसिस-सिन्थेसिस की बात करने वाले वैज्ञानिकता के दावेदार शिक्षा की ऋषि-पद्धति देखने का कष्ट नहीं करते? यदि देखते तो उन्हें कहना पड़ता, लगता है कि हीगेल के पूर्व यह पद्धति भारत से बाहर चली गई थी। लेकिन इस पद्धति का मूल तो उस वेद की शिक्षा में है जो सूर्य

को केन्द्र मानता है। मेघा को सांझ शुबह और दोपहर में देखता है। काल के तीन भागों में तीन आठों का योग देखता है और कहता है, पृथ्वी गायत्री छन्द में नाच रही है-चौबीस घंटे में तो चौबीस वर्ष विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा के लिए रहने दो, पच्चीसवें वर्ष यह गृहस्थ आश्रम में आयेगा। बसंत तपने दो ग्रीष्म में, पावस की झमाझम बरसात सही होगी। कोई राजसत्ता मनुष्य की शिक्षा व्यवस्था में कचड़ा डाल सकती है। प्रकृति की शिक्षा व्यवस्था तो अविराम चलती रहेगी। आप्त शिक्षा पद्धति सृष्टि से अभिन्न है। सृष्टि यज्ञ से शिक्षा के आधार विकसित हुए हैं।

वेद मंत्रों में शिक्षा शब्द कई स्थान पर प्रयुक्त हुआ है- समृद्धि प्रदान करने के अर्थ में अथवा सीख देने-सिखलाने के अर्थ में-भरतं शिक्षतं वज्रवाहू (ऋ. 1/27/5) पुरंदरा शिक्षतं (ऋ. 1/09/7) उत शिक्षास्वपत्यस्व शिक्षां (ऋ. 3/19/3) उप शिक्षयंति यज्ञै (ऋ.10/173/10), शिक्षानरः (ऋ. 1/53/2)। शिक्षा समृद्धि का द्योतक है। आध्यात्मिक विभुता ही नहीं, श्री सम्पदाओं के लिए भी या कहें सर्वसमृद्धि के लिए शिक्षा की भूमिका अनिवार्य मानी गयी है। तैत्तिरीयोपनिषद की शिक्षावल्ली से भी सर्वसमृद्धि के लिए शिक्षा की अनिवार्यता उजागर होती है।

प्रश्न उठता है, क्या वेद की शिक्षा सबके के लिए उपलब्ध रही है? इसका उत्तर है-हाँ सबके लिए उपलबध रही है। निश्चित रूप से वेद मंत्र तक सबका पहुँच पाना कठिन है, लेकिन श्रुति में स्मृति, पुराण, इतिहास इत्यादि का उपबृहण इसीलिए होता गया कि वेद का ज्ञान सबके लिए उपलब्ध हो। पुराण, इतिहास जाने बिना यदि कोई अल्पश्रुत वेद व्याख्यान करता है। तब वेद डर जाता है कि वह मुझे मारेगा-

इतिहास पुराणाभयां वेद समुपबृहंयेत्।
विभेत्यल्पश्रुता द्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

श्रुति (वेद) के अवतरण का अद्‌भुत उदाहरण भागवत है। श्रीकृष्ण और गोपियों का अवतरण वेद में कैसे हुआ है और इसे पुराण में किस प्रकार उपबृहित किया गया है, देखने योग्य है। जैसे सूर्य में रश्मियां हैं-समुद्र की लहरें-रसानंद ब्रह्म के अनेक रस। रसो वै सः श्रुति वचन द्वारा उस परमसत्ता को रस मूल कहा गया है। रस का मूल है भाव। भावमय परमात्मा कृष्ण का जब अवतरण हुआ है, उनके साथ सभी रस अवतरित होते हैं। इन रसों का मूल रसेश्वरी राधा भी व्रज में अवतरित होती हैं। वादे के मुताबिक सारस्वत कल्प में रसों वै सः श्रीकृष्ण जब अवतरित हुए, वेद की ऋचाएँ भी गोपियाँ बनकर अवतरित हुईं। पुराण में गोपियों के चार प्रकार बताये गये हैं-नित्यसिद्धा,

श्रुतिपुत्र रूपा, और प्रकीर्ण। वेद की श्रुतियाँ दो प्रकार की हैं- अन्यपूर्वा श्रुति और अनन्यपूर्वा श्रुति। जिस श्रुति द्वारा पहले किसी देवता की और बाद में परमात्मा की स्तुति की गई हो, वह अन्यपूर्वा श्रुति कही जाती है और जो श्रुति प्रारंभ से अन्त तक एकनिष्ठ केवल परमात्मा का बखान करती हो, वह अन्यपूर्वा श्रुति कही जाती है। इन दोनों के स्वभावों की गोपियां ब्रज में अवतरित हुई जो गोपी घर-गृहस्थी में बँधी और बाद में श्रीकृष्ण की संगिनी हुईं, वह अन्य पूर्वा श्रुति का अवतार कही गयी और जो प्रारंभ से ही श्रीकृष्ण की संगिनी हुई वह अन्यपूर्ण श्रुति का अवतार कही गई। इस प्रकार जो पुराणों का संबंध के नित्य ज्ञान से है। वेद का गूढ ज्ञान सामान्य कथा के माध्यम से रोचक शैली का पुराण प्रस्तुत करते हैं। ज्ञान को आख्यानों में रूपान्तरित करके ऋषियों ने लोकमानस तक पहुँचाया। महाऋषि वेद व्यास ने महाभारत नामक इतिहास द्वारा वेद ज्ञान का मूर्तन ही नहीं किया, अपितु गीता जैसी दिव्य मणि भी बनाई, जिससे लोक ज्ञान का प्रकाश पा सके। वेद का ज्ञान अनेक स्रोतों से लोक में व्याप्त हुआ है। असुरों के गुरु शुक्राचार्य और देवताओं के गुरु वृहस्पति से संबंधित आख्यान हो अथवा वृहस्पति की पत्नी तारा से चन्द्रमा के प्रेम प्रसंग और बुध के जन्म का आख्यान, इनसे गहरे तथ्यों की सामान्य कथा में प्रस्तुति हुई। तारा और चन्द्रमा की अद्‌भुत कथा में बारह राशियों और 27 नक्षत्रों में विभाजित तारा मंडल का रहस्य छुपा हुआ है, यह कि चन्द्रमा की राशि कर्क के अन्तर्गत अश्लेषा और पुष्प पूरी तरह आते हैं और पुर्नवसु नक्षत्र का एक चरण आता है। पुष्प और बृहस्पति का आपसी संबंध हैं ये दोनों अंगिरस हैं, एक स्वभाव के हैं। दोनों अग्नि प्रधान हैं। पुष्य को तारा कहा गया है इसमें निजी स्वभाव से अग्नि है लेकिन, कर्क में स्थित होने के कारण चन्द्रमा के प्रभाव से सोम का गुण भी है। बृहस्पति पुष्य (तारा) का अंगिरस (आग्नेय तत्त्व) ग्रहण करता है और उसका सोम छोड़ देता है। उस सोम को मिथुन राशि का स्वामी बुध प्राप्त कर लेता और सौम्य कहा जाता है। ब्रह्माण्डीय यज्ञ की अनुरूपता में यज्ञ कर्म करने वाले ऋषियों ने खगोलीय घटना का वर्णन मानवीय चरित्र की भाँति किया। उनकी दृष्टि से सभी खगोलीय पिण्ड सजीव सत्ता हैं। उनकी कथा भी सजीव बनी। इसी प्रकार शुक्राचार्य और बृहस्पति के आख्यान। इन ग्रहों से प्राणी जगत प्रभावित भी होता है। वेद के स्रोत से अनेक चरित्रों का मानवीकरण हुआ है। जैसे वेद में ययाति मनोमय आत्मा का चरित्र है। यह अनात्म और आत्मा दोनों प्रवृत्तियों में दोलन करता है। यह चरित्र देवयानी और शर्मिष्ठा के मध्य हिलता रहता है। इसे मनु भी कहा गया है। जो श्रद्धा ओर इडा की दुहरी आसक्ति में फंसता है।

जयशंकर प्रसाद की कामायनी का कथा स्रोत वेद है। इसे आधुनिक काल में किया गया वेद का उपबृहण कहा जा सकता हैं। कामायनी की कथा में ऐतिहासिक प्रमाण से अधिक अनुभविक प्रमाण है। इसमें प्रवृत्तियों ने मूर्त रूप धारण किया है। प्रसाद की कामायनी की भूमिका में लिखा है- 'आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं। तब भी उसके तिथि क्रम की संतुष्टि न होकर मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। इसका मूल का रहस्य है? आत्मा की अनुभूति। हाँ, उसी भाव के रूपग्रहण की चेष्टा सत्य है घटना बनाकर प्रत्यक्ष होती है। वे सत्य घटनाएं स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती हैं। किन्तु सूक्ष्म अनुभूति या भाव चिरंतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठत रहता है जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की ओर पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती रहती है। प्रसाद के कथन से प्रवृतियों के अनुभवपरक संसार की निरंतरता को स्वीकृति मिलती है। वास्तव में मनोजगत का सत्य नित्यानित्य है। प्रसाद के इतिहास दृष्टि याज्ञिक है, जिसमें काल के तीनों स्तरों में अस्तित्व को विद्यमान माना जाता है। मनुष्य केवल देह होता तो वह स्थूल और क्षणिक अस्तित्व होता, लेकिन मनुष्य मन और चित भी है उसका सूक्ष्म असितत्व चिरकालिक होता है। उसकी यश: काया हमेशा विद्यमान रहती है। उसमें निहित प्रवृत्तियाँ इसी सृष्टि की हैं। वे अन्यत्र सक्रिय रहती है। इन त्रिधा गुणों का अन्त नहीं होता। तीनों कालों में उनकी उपस्थिति बनी रहती है।

वेद में उपबृहित इतिहास में भी स्मृति को आधार बनाया जाता है। किसी साम्राज्य की कीर्तियों को इस उद्देश्य से ढोना कि उससे मनुष्य आगे न जा सके, इसके लिए भारतीय परंपरा का इतिहास नहीं होता, अपितु इसलिए इतिहास की आवश्यकता समझी गई कि वह दीपक बनेगा, मोह के अंधकार को दूर करेगा, लोक के गर्भगृह को अच्छी तरह प्रकाशित करेगा। महाभारतकार का यही उद्देश्य था-

इतिहास प्रदीपेन मोहावरण घातिना।
लोक गर्भगृह कृत्स्नं यथ वत्स प्रकाशितम्।।87।। (आदिपर्व महा.)।।

श्रुति आलोक में ही स्मृति चलती है और इतिहास का आधार बनती है। श्रुति ऐसा ज्ञान है जो पूर्व काल में था और युगांत के बाद पुन: प्रकट हुआ। यह कल का ज्ञान नहीं है, न आज का ज्ञान है। यह सृष्टि के सामानान्तर सर्वदा रहने वाला ज्ञान है। ऋषियों से मुनियों ने जिस ज्ञान को सुना वह श्रुति कहा गया, मुनियों ने उस ज्ञान के आधार पर जिस ज्ञान को प्रसार किया उसे स्मृति कहा गया। स्मृति स्वयं प्रमाण नहीं

है, स्मृति का प्रमाण है श्रुति। महर्षि याज्ञवल्क्य के वचन श्रुति हैं और मनु के वचन स्मृति। रामायण के विषय में नारद से सुनकर सनत्कुमार ने कहा–हे नारद आपने यह इतिहास सुनाया, अब रामायण के महात्म्य को विस्तार से वर्णन कीजिए–

अहो विप्र इदं प्रोक्तमितिहासं च नारद।
रामायणस्य महात्म्य त्वं पुनर्वद विस्तरात।।11।।

(रामायण महात्म्य अध्याय–3, बा.रा.)।

इतिहास स्मृति से प्रसूत होता है। चूँकि स्मृति इतिहास को प्रमाणित करती हैं उसे श्रुति का उपबृहण कहा गया। यह इतिहास लोक जीवन को प्रकाशित करता है। यह मनुष्य जीवन को भूतकालिक प्रभाव में ले जाने के लिए नहीं होता। यह काल की गतिशीलता में सृजन–यज्ञ का नित्यनूतन हिस्सा बनता है। इतिहास नित्यश्रुतियों तक ले जाने में सहयोग करता है। इन्हीं अर्थों में रामायण एवं महाभारत को इतिहास कहा गया है। नाना पुराण निगमागम सम्मत तुलसीदास कृत रामचरित मानस भी सर्वांग सुन्दर वेद का उपबृहण हैं। तुलसी ने अपनी कृति को लोकवेद कहा भी है। इस रचना में वेद का सारभूत ज्ञान पिरोया हुआ है।

वेद लोकमानस में हमेशा उपस्थित रहा। इस कार्य में भरतमुनि का नाट्यशास्त्र जिसे नाट्यवेद कहा जाता है की भूमिका भुलाई नहीं जा सकती, जिसका जग्राह पाठ ऋग, अभिनय यजु, संगीत साम और रस निष्पति अथर्व वेद माना जाता है–

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामेभ्योगीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान रसायथर्वणदपि।।

(नाट्य शास्त्र, प्रथमाध्याय)।

ज्ञान के सभी क्षेत्रों में वेद प्रतिष्ठित है– इस कथन के प्रमाण में वेद का मंत्र–

चत्वरि श्रृंगास्त्रयो अस्य पादा द्वैशीर्ष सप्त हस्तयो अस्य।
त्रिधावद्धो वृषभोरोरवीति महोदवो मर्त्या आविवेश।।

(यजु. 17–91)

उल्लेखित होता रहा है। इस मंत्र के तीन अर्थ किये गए हैं। उब्वट, महीधर आदि वेदभाष्यकारों ने इसका अर्थ यज्ञपरक और व्याकरणपरक किया है। पातंजलि ने व्याकरण के प्रयोजन से इसका अर्थ बताया है। न्याय, वैशेषिक योग, सांख्य,

पूर्वमीमांसा- उत्तरमीमांसा (वेदांत), भक्तिदर्शन, धर्मशास्त्र की रंचना को इस मंत्र पर आधारित माना गया है। आगम शास्त्रों का मूल स्त्रोत निगम (वेद) को ही माना जाता है। दतिया पीताम्बरापीठ के स्वामी जी ने मंत्रशास्त्र प्रतिपादित सिद्धान्तों को उक्त वेद मंत्र में समाविष्ट बताया है। मनु के कथन-'सर्ववेदात् प्रसिद्धति' को स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं है।

वैदिक प्रज्ञान में एक निर्धारित ज्यामितीय आकार है और सुनिश्चित संख्या क्रम भी संगीत के मन्द्र, मध्यम और द्रुत स्वरों और स्तकों के सदृश्य ज्ञान देवता का विराट स्वरूप त्रिसप्तात्मक है। रंगों और ध्वनियों में भी यह त्रिसप्त उपासित होता है। सृष्टि यज्ञ में यह वर्ण वेदी व्याप्त है। यही सरस्वती है। विश्वरूप से अभिन्न वाग् विस्तार करने वाले विश्व विद्या के प्रवर्तक बृहस्पति के बल को अथर्ववेद का प्रथम मंत्र स्मरण करता है-ये त्रिषप्ता: परियन्ति विश्वरूपाणि विभ्रत:। विश्व रचना के अंग सभी प्राणियों के भीतर छिपी हुई छोटी-छोटी समस्त विद्याएँ विश्वरूप विराट प्रजापति के अंश है। विराट प्रजापति दशावयव हैं। इसमें स्त्री-पुरुष दोनों समाहित हैं। इसकी नौ संख्याएँ सृजनशील हैं-न्यूनाद वा इमा: प्रजा: प्रजायन्त (शत, 11/1/2/4) न्यून विराट स्त्री है, यही भविष्य का सृजन गर्भ है और आच्छादन के रूप दसवीं संख्या के कारण पुरुष उसका अधिष्ठान है। इसीलिए प्राणी मात्र में निहीत विद्याएँ समेकित रूप में 'विश्वविद्या' कही गई। जिस विश्वविद्या के अध्ययन-अध्यापन के लिए 'विश्वविद्यालय' नाम की स्थापना हुई। ऐतिहासिक दुर्योग से आज 'विश्वविद्या' का ज्ञान पुरावेष समझा जा रहा है और विश्वविद्यालय को यूनीवर्सिटी का पर्याय बताााय जा रहा है।

भारतीय समाज व्यवस्था की अनोखी विशेषता यह है कि यह समाज गोत्र में वर्गीकृत है। गोत्र और ज्ञान दोनों ऋषियों से संबंधित है। ज्ञान के स्त्रोत भी ऋषि हैं और गोत्र के भी। भारत का समाज ज्ञानियों का समाज है। सबको वेद का ज्ञान का उत्तराधिकार प्राप्त है। बोधायान श्रीतसूत्रम् ग्रंथ के प्रवराध्याय में कहा गया है कि गोत्र तो सहस्त्रों हैं-अरबों हैं। उनमें से उनचास गोत्र प्रधान हैं। इन्हीं में ऋषि प्रवरों के दर्शन होते हैं और इन्हीं में सप्त ऋषि आते हैं। विश्वामित्र, जगदग्नि, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप ये सात ऋषि प्रमुख है।

गोत्राणांतु सहस्राणि प्रयुतान्यर्वुदानि च।
ऊ पंचास दे वैषां प्रवरा ऋषि दर्शनात्।।

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गोतमः।
अत्रिर्वसिष्ठ कश्यप इत्ययेते सप्त ऋषयः।।

ये सात ऋषि उनचास मरुद प्राणों के घनीभूत रूप है। मरुद का अर्थ है (मर+उत्) – मृत्यु से ऊपर उठा हुआ। मरुद प्राण सृष्टि चक्र में व्यय नहीं होते। इन्हीं से चौदह भुवन और सप्त ऋषि प्रकट होते हैं। सप्त ऋषियों में भृगु और अंगिरा दो ही मूलभूत प्राण हैं। अंगिरा से यम, अग्नि और आदित्य तीन आग्नेय प्राण उत्पन्न हाते हैं। भृगु से सोम, वायु आपः ये तीन सौम्य प्राण उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण जगत भृगु (सोम) और अंगिरा (अग्नि) से निर्मित हुआ है। मनुष्य देह की दश इन्द्रियों के संचालक और निर्माता अग्नि और सोम वर्गों के पाँच–पाँच प्राण कुल दश प्राण हैं। इन्हें विराट कहते है। एक मुख, दो नासिका, दो नेत्र, दो कान, एक पायु, एक शिश्न, और एक नाभि कुल दस केन्द्र दस प्राणों से संचालित केन्द्र होते हैं। ऋषि निरूपण के प्रसंग में मैत्रायणी शखा की श्रुति (2/1/5) 'मनोर्ऋचो भवति' कहते हुए स्थापित करती है कि इन्द्र से उत्पन्न भृगु–अंगिरा आदि ऋषि, ऋग् आदि वेद अमृत प्राण है। विराट यज्ञपुरूष से इन ऋषिगणों की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार वेद मनुष्य–देह के प्राणों और इन्द्रियों को ऋषियों से संबंधित बतलाता है। ऋग्वेद के दस मंडलों में सात ऋषियों, उनकी संतानों और शिष्यों के सूक्त संकलित हैं। पहले मंडल में भारद्वाज, उनकी संतानों और शिष्यों के सूक्त हैं। शेष मंडलों में जन्मदाग्नि, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप की वंश–शिष्य परंपरा के सूक्त संग्रहित हैं। सात ऋषियों से आगे बढ़े सात गोत्रों में सभी मनुष्य सम्मिलित हैं।

प्रत्येक गोत्र के वेद, शाखा, सूत्र और उपवेद निर्धारित हैं। सभी मनुष्य वेद की ज्ञान–परंपरा के उत्तराधिकारी हैं। कालांतर में न केवल गोत्र और ज्ञान का उत्तराधिकार क्षतिग्रस्त हुआ बल्कि वेदों की शाखाएँ भी लुप्त हुईं। महाभारत काल तक चारों वेदों की ग्यारह सौ एकतीस शाखाएँ विद्यमान थीं। उनमें से आज केवल ग्यारह शाखाएँ पूर्ण रूप से और कृष्ण यजुर्वेद की कठ–कषिष्ठल संहिता की आधी शाखा उपलब्ध है। शेष वैदिक शाखाओं के ज्ञान, उनकी शिक्षा और आजीविका के कर्म समाप्त हो गए। इन शाखाओं के उत्तराधिकारी वंश अन्य कर्मों में प्रवृत्त हो गए।

अंग्रेजों ने अपने शासन काल में भारत की समाज व्यवस्था का अध्ययन किया था। उन्होंने इसे ध्वस्त करने के अथक प्रयास किये थे। अंगेजों ने भारतवासियों के

व्यवसाय, उत्पादन और आजीविका को पूरी बर्बरता से नष्ट किया। उन्होंने गोत्र और ज्ञान के सूत्र को भी तोड़ा। मैक्समूलर ने गोत्र को गोष्ठ से उत्पन्न बताया अर्थात् गोत्र गाय बाँधने की जगह घोठा या बाड़ा से संबंधित है। गायों की संख्या से बनने वाली सामाजिक हैसियत के अनुसार भारतीय समाज का वर्गीकरण हुआ, ज्ञान के उत्तराधिकार से नहीं। ज्ञान संपदा से बेखबर किया गया और आार्थिक वर्गीकरण की हवा दी गई।

ज्ञान का स्तर और उससे संबंधित आचार द्वारा सामाजिक भूमिका एवं आजीविका आज भी निर्धारित होती है। अर्जित सम्पत्ति का उत्तराधिकार संतान और शिष्य आज भी प्राप्त करते हैं। ज्ञान से आर्थिक उत्पादन एवं पद-प्रतिष्ठा का ही नहीं, वैश्विक शक्ति-समीकरणों का भी संबंध है। आज की प्रचलित शिक्षा में ज्ञान-प्राप्ति का आचार स्थापित नहीं है। नैसर्गिक प्रतिभा को ही जानकारियों और सूचनाओं से भरा जाता है। नतीजा यह होता है कि शिक्षा कई अर्थों में मनुष्य के पतन का कारण बनती है। जिन बुराईयों से अशिक्षित व्यक्ति बच जाता है, उन्हीं बुराइयों को शिक्षित व्यक्ति आसानी से ढोने लगता है। प्रतिभा और ज्ञान को जरूरतों के जाल में फँसा कर रखने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता आर्थिक शक्तियों के पास नहीं यदि ज्ञान अर्जित करने के आचारों की स्थापना होती और यह समझा जाता कि स्नायुमंडल की शुद्धता से ज्ञानवती रश्मियों का सीधा संबंध है तो ज्ञान के स्तरों और भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञान अर्जित करने के आचारों की समझ पैदा होती। इससे ज्ञानियों का निर्माण हो पाता। दुनिया को मुट्ठी में बन्द करने की कोशिशों में लगी आर्थिक शक्तियों ने जैसे राजसत्ता को औजार बना लिया है, प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को भी साधन बना लिया है। आज ज्ञान ऊपर नहीं, नीचे है।

भारत में भी गोत्र और ज्ञान का अर्थ विलुप्त प्राय हो गया है। मंत्र दीक्षा के कुछ पीठ अभी भी हैं। जहाँ वेद शाखा, सूत्र, गोत्र आदि पूछ-जानकर दीक्षा दी जाती है। लेकिन व्यापक शिक्षा क्षेत्र में मनुष्य की चेतनागत विशेषताओं और नैसर्गिक क्षमताओं को जाँच परखकर शिक्षित करने का कोई पैमाना नहीं है। छात्र की रूचि की बात जरूर उठ रही है जिसे मामूली पहल या रूझान कह सकते हैं। छात्र की गहरी रुचि बाहरी असर से बन-बिगड़ सकती है। पूरे जीवन की प्रमुख भूमिका तय करने वाली मूल प्रवृत्ति का अनुसंधान करके शिक्षा क्षेत्र तय करना कठिन है। हमारे मनीषियों ने पाँचों ज्ञान इन्द्रियों को संचालित करने वाले मन की शक्ति और उससे स्वरूप को परखा, मन के शक्ति स्रोत को ज्ञात किया और देखा दैहिक काल से सूक्ष्म मानसिक काल है और

उससे भी सूक्ष्म चैतसिक काल है। इस त्रिधा अस्तित्व को बल देने वाली शक्ति देहातीत है। वह समष्टि में व्याप्त है। इसी ज्ञान के कारण क्रमिक आचार स्थापित हुए, ज्ञान स्रोत के आचार भी वर्गीकृत हुए। जिसे भौतिक समृद्धि चाहिए वह शुक्र को और जिसे आध्यात्मिक ज्ञान चाहिए, बृहस्पति को अनुसरित करेगा। यह भी कहा गया कि ये दोनों अपूर्ण हैं, अंधकार हैं। विद्या और अविद्या को उभयरूप से साधना होगा। इस युगलबंदी से जो ज्ञान धारा प्रवाहित हुई उसमें ज्ञान के भेद हुए, आचार के भेद हुए, वृत्ति और अर्जित सम्पत्ति के भेद हुए। बेईमानी के धन में अन्तर माना गया और इससे आत्मनियंत्रित समाज व्यवस्था निर्मित हुई। पराधीन भारत में लुटेरों का चरित्र सफलता की कुंजी बना। भ्रष्टाचार में पैसे का पेड़ दिखा। आत्मनियंत्रित समाज की नैतिकता व्यर्थ होने लगी। आज विश्व के अन्य देशों के विकासशील लोग भी कह रहे हैं, 'महत्वपूर्ण यह नहीं है, कि आपने कितना पैसा कमाया, महत्वपूर्ण यह है कि किस मार्ग से कमाया।' मनुष्य के परिणाम होते हैं। यह बात तब भी सत्य थी, आज भी है, और कल भी रहेगी। आत्मिक कर्मों और अनात्मिक कर्मों का अन्तर रहेगा। पर, जैसी व्यापक शक्ति संरचना संसार में रहेगी, उसी का आचरण युगीन सफलताओं का मार्ग बनेगा। अभी अविद्या के अन्धकार की प्रधानता है, प्रकृति विरोधी यंत्र-विज्ञान मुँह खोल कर खड़ा सर्वनाश का आवाहन कर रहा है। विद्या निराधार नैतिकता समझी जा रही है। इन दोनों के समन्वित रूप की स्थापना आवश्यक है।

अफसोस यह है कि भारत के लोग अपनी विरासत भूल चुके हैं। उस विरासत की नवीन भूमिका क्या होगी, उसका स्वरूप क्या होगा-ये सवाल चुनौती दे रहे हैं। आज का मनुष्य मानवसंसाधन है। मनुष्य की जरूरतों पर बाजार लगाने वालों के लिए मानव-संसाधन, प्रवचनी बाबाओं के लिए भी और कम्पनी खड़ी करने वालों के लिए भी-कमाई का जरिया। शोषण के दोहरे पाटों के बीच पीसे जा रहे मनुष्य की रक्षा का मार्ग क्या होगा? शिक्षा को हथियार या औजारों बनाने का सिलसिला बंद नहीं हुआ है। वह कौन-सी शिक्षा होगी जो मनुष्य को विश्व व्यवस्था और विश्व शक्ति का ज्ञान दे सके? आज तो इन्द्रियों को कर्मेन्द्रियों को जागतिक भूमिका से विचलित करने वाले शक्तिशाली माध्यम सक्रिय हैं। मनोरंजन और सूचना के दावेदार टीवी चैनल समाज का चैन लेकर अपने नाम को सार्थक कर रहे हैं। ये समाज चेतना को रौंद रहे हैं या हरा-भरा बना हरे हैं? यह विचारने का समय निकट आ चुका है। नये वातावरण में पड़ताल करना जरूरी है कि हमारे समाज और शिक्षा क्षेत्र में ऐसे कितने गुरु हैं जिनके

भीतर अन्तर्ज्ञान की ज्योति जल रही है। और वे शिष्य के भीतर ज्ञान की ज्योति प्रज्जवलित करने में सक्षम हैं स्वयं आनन्दमय हैं और शिष्य को आनंद में प्रवेश करने का सामर्थ्य प्रदान कर सकते हैं। यदि यह शिक्षा का पैमाना नही है, विषय की सम्पन्नता और अर्थ की प्रचुरता से ही जीवन सफल हो सकता है। तब भी भौतिक ज्ञान से आत्म सम्पन्न आचार्यों का भारी अभाव है। कौटिल्य जैसा आचार्य भारत के प्राचीन विद्याओं द्वारा निर्मित हो सकता था। जिस त्रयी विद्या के भौतिक पक्ष को अत्यन्त सूक्ष्मता और विस्तार से कौटिल्य का अर्थशास्त्र राष्ट्र के अभ्युदय के लिए समायोजित करता है, वह विद्या हमारी मौजूदा शिक्षा से दूर हो गयी है और हमें स्वयं की महिमा भी बिसर गई है।

मीलों विस्तार में फैला विशाल तक्षशिला विश्वविद्यालय प्रमुखत: वेद की 'विश्वविद्या' का शिक्षा केन्द्र था। यहाँ वेद से संबंधित अठारह विद्यायें पढ़ाई जाती थीं। यहाँ दर्शन, साहित्य, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद के अतिरिक्त सत्यापत्य और शिल्प की शिक्षायें भी दी जाती थीं। यहाँ चाणक्य जैसे अर्थशास्त्री और भृत्य कौमार जीव जैसे शल्य चिकित्सक अध्यापक थे। पांच सौ वर्ष पूर्व ईसवी से छठी शताब्दी तक यह विश्वविद्यालय विश्व को ज्ञान का आलोक बांटता रहा। हूणों ने इसे ध्वस्त किया। इसकी खुदाई में ब्राह्मी और खरोष्टी लिपियों के ढ़ाई हजार वर्ष पुराने शिलालेख प्राप्त हुए हैं। कलम, दवात, प्रकाश स्तम्भ इत्यादि पुरावशेष भी मिले हैं।

भारत में दी जाने वाली प्राचीन शिक्षा की बड़ी विशेषता यह थी कि यह नि:शुल्क होती थी। आज के सम्पन्न देश बिना भेदभाव के विश्वभर के छात्रों को नि:शुल्क शिक्षा देने का साहस कर पायेंगे क्या? शिक्षा व्यवसायों पर नियंत्रण रखने के लिए दुनिया को भारत का यह प्राचीन आदर्श याद रखना चाहिए और विश्व सभ्यता के निर्माण में भारत के शैक्षिक योगदान के लिए भी ऋणी रहना चाहिए। 1921 ईसवीं में नालन्दा के खण्डहरों की खुदाई से प्राप्त ताम्रपत्र में उल्लेख है कि सुवर्ण द्वीप के शासक बालपुत्र देव ने बंगाल के देवपाल से नालन्दा विद्यापीठ को पांच गांव देने का आग्रह किया। यह ताम्रपत्र 841 ईसवीं में लिखा गया है। इसी विद्यापीठ के लिए बौद्ध राजा शैलेन्दर ने भी विहार बनवाये थे। उन्होंने भी शिक्षार्थी भिक्षुओं के लिए अग्रहार की व्यवस्था संबंधी आग्रह देवपाल से किया था। इन ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भारत के राज आर्थिक सहयोग और विद्वान बौद्धिक सम्पत्ति से विश्व के भविष्य निर्माण के लिए तत्पर रहते थे। नालंदा में चीन, जापान, तातार, मध्य एशिया, तिब्बत, श्याम, वर्मा, मलय के

छात्र पढ़ने आते थे। इस शिक्षा केन्द्र में दस हजार से अधिक छात्र और पन्द्रह सौ अध्यापक थे। नालंदा के खण्डहरों से महायान के संस्थापक आचार्य नागार्जुन की मूर्ति प्राप्त हुई है। फाहियान और तवान ध्वांग के विवरणों से इसके बारे में जानकारी मिलती है। इस केन्द्र में प्रधानत: बौद्ध सम्प्रदायों के ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। ब्राह्मण और जैन दर्शन, साहित्य और अनेक हस्त कौशलों की शिक्षा दी जाती थी।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय भी एक भव्य शिक्षा केन्द्र था, जिसके चार प्रवेश द्वार थे। इन द्वारों पर परीक्षागृह बने हुए थे, जहाँ दिग्गज विद्वान रहते थे। उन्हें संतुष्ठ करने के बाद छात्रों को प्रवेश मिलता था। यहाँ विदेशी छात्रों को विशेष सुविधा प्राप्त थी। इनके आहार और आवास इत्यादि की व्यवस्था विश्वविद्यालय करता था। यहाँ धर्म, न्याय, साहित्य और मंत्र शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। इसके प्रागंण के मध्य में बोधिसत्व की मूर्ति स्थापित थी। प्रांगण में अनेक देवालय बने थे।

वर्तमान दौर की शिक्षा की नासदीयता अपने स्वत्व अथवा स्वधा से प्राण खींचकर अपनी महिमा को याद करके और तपस के तेज से उपजी कामनाओं को साकार करने के प्रयत्नों से ही दूर होगी। अन्यथा विध्वंस और शून्यता में जड़ होती हमारी क्षमता का उपयोग कोई दूसरा करता रहेगा और सुखी होता रहेगा। इस परिस्थिति के विरूद्ध स्वाधीन शिक्षा की विसृष्टि करनी होगी। जिसका व्योम अपना होगा, जिसकी त्रिक शक्तियाँ अपने देश काल में विस्तार लेंगी। इस दिशा में अधुनातन मनीषियों द्वारा की गईं तपस्या व्यर्थ नहीं जायेगी।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

आफताब जाकिरा सिद्दीकी*

जॉन डी.वी. ने शिक्षा को त्रिमुखी प्रक्रिया बताया है। इसमें शिक्षार्थी, शिक्षक तथा सामाजिक वातावरण, ये तीनों शैक्षिक प्रक्रिया के आधार स्तम्भ हैं। शिक्षा की सभी गतिविधियां अध्यापक के इर्द-गिर्द घूमती हैं। भारतीय परम्पराओं के अनुसार, अध्यापक समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखता है। वह सामाजिक शक्तियों, परम्पराओं व आदर्शों का ज्ञान रखता है, क्योंकि वह समाज के अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। किसी भी विषय के शिक्षण की सफलता उसके अध्यापक पर बहुत कुछ निर्भर करती है। अच्छे से अच्छे पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है, शिक्षण विधियों तथा शिक्षण सामग्री की तलाश की जाती है, उपयुक्त पाठ्यक्रमों की रचना की जाती है। परन्तु ये सभी साधन और स्रोत कितने भी उपयुक्त और प्रभावपूर्ण क्यों न हों, योग्य और समर्थ अध्यापकों के अभाव में निष्प्राण और निर्जीव ही सिद्ध होते हैं। अध्यापक का स्थान सभी प्रकार की शिक्षण सामग्री और साधनों में सबसे ऊपर है। विद्यार्थियों के लिए अध्यापक ही प्रेरणा और ज्ञान का ऐसा स्रोत है जो उनके ज्ञान रूपी अंधकार को दूर करता है। साथ ही उन्हें समाज को अच्छी तरह समझकर उसके भली भांति व्यवस्थित होने एवं समाज की प्रगति में अमूल्य योगदान देने में सक्षम बनाता है।

अध्यापक शिक्षा प्रदान करते हुए लोगों को प्राचीन रूढ़िवादी भावनाओं से छुटकारा दिलवा सकता है। जॉन डी.वी. के अनुसार, ''अध्यापक समाज में ईश्वर का प्रतिनिधि है।''

शिक्षा का मुख्य कार्य विकास के प्रमुख पहलुओं-शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक,

* प्रवक्ता, बी.एड. विभाग, सीतापुर शिक्षा संस्थान, सीतापुर (उ.प्र.)

संवेगात्मक, सामाजिक एवं नैतिक विकास के बीच सामंजस्य एवं नैतिक विकास के बीच सामंजस्य लाना है।

शिक्षा मूल्यों का विकास करने में सहायक है। समाज की उन्नति में सदस्यों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। समाज की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सदस्य सतत् प्रत्यनशील रहते हैं। मूल्य उन्हें इस उत्तरदायित्व को निभाने में सहायता करते है। समाज की संस्कृति और संस्कार को निखारने में मूल्य उपयोगी सिद्ध होते हैं। सत्य, निष्ठा, परोपकार, कर्त्तव्य परायणता और सेवा भावना समाज को एकजुट रखने में सहायक है। विभिन्न दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मूल्य शब्द को परिभाषित किया है। शिक्षा के शब्दकोश में गुड ने 'मूल्य' की चारित्रिक विशेषता बताते हुए इसे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सौन्दर्य बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना है। जॉन डी.वी. ने मूल्यों को परिवर्तनशील माना है। उनके अनुसार संसार में प्रक्रिया एवं परिवर्तन चलते रहते हैं। अत: मूल्य कभी अपने आदर्श रूप में स्थिर नहीं रह सकते हैं। वे सामाजिक कार्यों तथा गतिविधयों से विस्तृत होते हैं।

आम तौर से मूल्यों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया गया है–

1. दार्शनिक
2. मनोवैज्ञानिक
3. सामाजिक

स्प्रिंगर ने मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

1. सैद्धान्तिक मूल्य
2. आर्थिक मूल्य
3. सामाजिक मूल्य
4. सौन्दर्यात्मक मूल्य
5. राजनीतिक मूल्य
6. धार्मिक मूल्य

अध्ययन की आवश्यकता

डा. राधाकृष्ण आयोग (1948-49)– आयोग ने प्रतिवेदन में यह मत अंकित किया है कि यद्यपि भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है। इसका अभिप्राय धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता का निषेध करना है, न कि व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता का।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)– ने भी शिक्षा के द्वारा विभिन्न मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है।

कोठारी आयोग (1964-66)– मूल्य शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए शिक्षा आयोग ने मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखा है। ''विद्यालय का वातावरण अध्यापकों का व्यक्तित्व एवं व्यवहार तथा विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधाएं छात्रों को मूल्योन्मुख बनाने में विशेष भूमिका निभाती हैं। हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि विविध मूल्यों के प्रति जागृत विद्यालय सम्पूर्ण पाठ्यक्रम एवं समस्त गतिविधियों को प्रभावित करें। मूल्यों के विकास के अभाव में मनुष्य चाहे जितना सुख-सुविधा के साधन जुटा ले, समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर ले, समाज में सुख एवं शान्ति कायम नहीं हो सकती। यही कारण है कि आज भौतिक प्रगति के बावजूद देश को अराजकता की स्थिति से गुजरना पड़ रहा है। वर्तमान समय में समाज में व्यभिचार, कदाचार एवं भ्रष्टाचार बढ़ा है। इन सबसे ऐसा लगता है कि समाज में मूल्य तिरोहित होते जा रहे हैं।

अत: शिक्षा द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में वांछित उच्चतम मूल्यों का विकास हो सके, किन्तु शिक्षा द्वारा ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा है। यह स्थिति समाज व राष्ट्र के लिए शुभ नहीं। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इस बात पर चिन्ता प्रकट की गयी कि ''जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मूल्यों पर से ही लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। शिक्षाक्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है, जिससे सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सके''।

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2000) में भी विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मूल्यों के विकास की बात कही गयी है।

वर्मा (1972) ने अध्यापकों में पारिवारिक प्रतिष्ठा, धार्मिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों की अधिकता को पाया।

कुमारी (1981) ने अपने अध्ययन में पाया कि पुरुष अध्यापकों में महिला अध्यापकों की अपेक्षा सौन्दर्यात्मक सामाजिकता एवं राजनैतिक मूल्य अधिक थे।

आनन्द (1980) ने अपने अध्ययन में पाया कि पुरुष अध्यापकों में राजनैतिक एवं आर्थिक मूल्यों की प्रधानता थी, जबकि महिला अध्यापिकाओं में सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक मूल्यों की प्रधानता थी। धार्मिक एवं सौन्दर्यात्मक, मूल्य महिला एवं पुरुष दोनों ही समूह के शिक्षकों में निम्न स्तर पर पाये गये।

वर्मा एवं त्यागी (1988) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि पुरुष अध्यापकों में आर्थिक एवं राजनैतिक मूल्य अधिक पाये गये। जबकि महिला अध्यापिकाओं में सामाजिक मूल्य अधिक थे।

उद्देश्य

वर्तमान समस्या के अध्ययन का उद्देश्य प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के मूल्यों आर्थिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, सैद्धान्तिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, धार्मिक मूल्य एवं राजनीतिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

परिकल्पना

शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के आर्थिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, सैद्धान्तिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, धार्मिक मूल्य एवं राजनीतिक मूल्य में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु ''सोद्देश्य न्यादर्श विधि'' द्वारा चयनित सीतापुर के प्राथमिक स्तर के चार विद्यालयों से 100 शिक्षकों/शिक्षिकाओं में से 50 शिक्षक एवं 50 शिक्षिकाओं का न्यादर्श सामान्य यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से लिया गया है। इन विद्यालयों के नाम हैं:

1. शंकर विद्या मन्दिर
2. कमलेश माण्टेसरी स्कूल
3. शत्रुघ्न विद्या मन्दिर
4. विवेकानन्द पब्लिक स्कूल

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए डा. हरभजन एल. सिंह तथा डा. एस.पी. अहलुवालिया द्वारा निर्मित टीचर वेल्यू इनवेन्टरी (T.V.I) प्रयोग किया गया।

सांख्यिकी विधि

आंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए मध्यमान, प्रामाणिक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी।

निष्कर्ष

इस अध्ययन में प्रयुक्त आंकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त परिणामों का अवलोकन करने पर

शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के मूल्यों से सम्बन्धित मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात (C.R) का विवरण

शिक्षक की सं.त्र 50 शिक्षिकाओं की सं.त्र 50		आर्थिक मूल्य	सामाजिक मूल्य	सैद्धान्तिक मूल्य	सौन्दर्यात्मक मूल्य	धार्मिक मूल्य	राजनैतिक मूल्य
मध्यमान	समूह शिक्षक	49.0	43.4	46.2	48.0	49.8	49.0
	शिक्षिका	53	47.4	46.6	49.0	49.6	53.6
मानक विचलन	शिक्षक	7.07	9.66	10.50	11	8.07	7.16
	शिक्षिका	6.92	9.63	11.48	7.28	10.04	7.02
क्रान्तिक अनुपात		2.66	1.87	0.18	0.54	1.09	2.07
डी.एफ.-98 के लिए सार्थकता .05		सार्थक अंतर है	सार्थक अंतर नहीं है	सार्थक अंतर नहीं है	सार्थक अंतर नहीं है	सार्थक अंतर नहीं है	सार्थक अंतर है
परिकल्पना		अस्वीकृत	स्वीकृत	स्वीकृत	स्वीकृत	स्वीकृत	अस्वीकृत

.05 सार्थकता स्तर पर मान त्र1.98

.01 सार्थकता स्तर पर मान त्र2.63

निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए-

1. आर्थिक मूल्यों के आधार पर सार्थक अंतर है। अत: परिकल्पना अस्वीकृत है। आर्थिक मूल्यों का विकास औसत स्तर का है।
2. सामाजिक मूल्यों के आधार पर सार्थक अंतर नहीं है, अत: परिकल्पना स्वीकृत है। दोनों में सामाजिक मूल्यों का विकास सामान्य स्तर से उच्च है।
3. सैद्धान्तिक मूल्यों के आधार पर सार्थक अंतर नहीं है, अत: परिकल्पना स्वीकृत है। शिक्षक तथा शिक्षिकाओं में सैद्धान्तिक मूल्यों का विकास औसत से उच्च स्तर का है।
4. सौन्दर्यात्मक मूल्यों के आधार पर सार्थक अंतर नहीं है, अत: परिकल्पना स्वीकृत है। सौन्दर्यात्मक मूल्यों में शिक्षक तथा शिक्षिकाओं के मूल्यों का विकास औसत से उच्च स्तर का है।
5. सार्थक अंतर नहीं है। शिक्षिकाओं में धार्मिक मूल्य शिक्षकों की अपेक्षा उच्च स्तर का है।
6. राजनैतिक मूल्य के आधार पर सार्थक अंतर है, अत: परिकल्पना अस्वीकृत है। इस मूल्य का विकास औसत स्तर का है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्राप्त निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं में मूल्य सामान्य से उच्च स्तर के हैं। वर्तमान समय में इन मूल्यों की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षण मूल्योन्मुखी कार्य है। अति उच्च मूल्यों से युक्त शिक्षक ही भावी नागरिकों में इन मूल्यों का विकास करके समाज में सुख एवं शान्ति स्थापित कर सकते हैं। शिक्षकों के महत्वपूर्ण दायित्वों का बोध भी कराया जा सकता है। सेमिनार, संगोष्ठी इत्यादि के माध्यम से अन्य कार्यरत शिक्षकों में भी इन्हीं भावों के विकास का प्रयास किया जाना वांछनीय है।

संदर्भ

कपिल, एच.पी., सांख्यिकी के मूल तत्व (नवीनतम पंजीकरण), विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-3

राय, पारसनाथ (1997-98), अनुसंधान, परिचय, सप्तम संस्करण, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल अस्पताल मार्ग, आगरा-3

पाण्डेय, आर.एस. (1990), भारतीय शिक्षा के विभिन्न आयाम, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, पृष्ठ-350

गुप्त कृष्णमुरारी (1991), शिक्षा मूल्य, जर्नल भारतीय आधुनिक शिक्षा वर्ष: अष्टम, अंक: चतुर्थ जुलाई 1991 पृष्ठ सं.-21

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन

मधु गुप्ता* और **वर्तिका नारंग****

प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी तथा उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना है। शोध अध्ययन हेतु प्रतिदर्श के रूप में 250 छात्राओं (अन्तर्मुखी–59, बहिर्मुखी–54, उभयमुखी–137) का चयन आकस्मिक प्रतिदर्श विधि द्वारा किया गया। छात्राओं के व्यक्तित्व के मापन हेतु पी.एफ. अजीज एवं रेखा अग्निहोत्री (1991) द्वारा निर्मित अन्तर्मुखी–बहिर्मुखी अनुसूची, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मापन हेतु शैलजा भागवत (2006) द्वारा निर्मित शैलजा भागवत वैज्ञानिक दृष्टिकोण मापनी तथा आध्यात्मिक बुद्धि के मापन हेतु रोकिया जेनुद्दीन तथा अंजुम अहमद (2010) द्वारा निर्मित रोकन आध्यात्मिक बुद्धि मापनी का प्रयोग किया गया। प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के सन्दर्भ में मध्यमान, मानक विचलन तथा क्रान्तिक अनुपात प्रविधियों का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी तथा उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी आध्यात्मिक बुद्धि पर कोई सार्थक प्रभाव परिलक्षित नहीं हुआ।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी दोनों ही राष्ट्र के निर्माण में सहायक हैं। आज के जटिल युग में ज्ञान का विस्फोट हो रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में कुछ वर्ष पूर्व जो स्थिति थी, उससे आज बहुत भिन्न है। अब प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह घर हो, फैक्ट्री हो, अस्पताल हो या अन्य

* विभागाध्यक्षा, शिक्षा विभाग, कुँ. आर.सी. महिला महाविद्यालय, मैनपुरी।
** प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, कुँ. आर.सी. महिला महाविद्यालय, मैनपुरी।

कोई भी स्थान हो, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग व्यक्ति का समय बचाने के लिए और ज्यादा से ज्यादा गति पर्याप्तता प्राप्त करने के लिए हो रहा है। इस दिशा में इतनी तेजी से आविष्कार हो रहे हैं कि अब यह माना जाता है कि हर दस वर्ष में ज्ञान दुगना हो जाता है। ज्ञान के दुगना होने से व्यक्ति के ज्ञान का विकास होना सम्भव नहीं है। इसके विकास के लिए व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना आवश्यक है, चाहे वह किसी भी प्रकार के व्यक्तित्व का क्यों न हो।

युंग (1923) ने 'साइकोलॉजिकल टाइप्स (Psychological Types) में व्यक्तित्व के अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी प्रकारों के विषय में बताया। उनके अनुसार जहाँ अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (Introvert Personality) वाले व्यक्ति कम बोलने वाले, लज्जाशील, स्वयं के लिए चिंतित तथा शीघ्र घबराने वाले होते हैं, वहीं बहिर्मुखी व्यक्तित्व (Extrovert Personality) वाले व्यक्ति मिलनसार, खुशमिजाज, शीघ्र न घबराने वाले होते हैं। अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनमें उक्त दोनों प्रकारों के व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएं होती हैं। इन्हें आधुनिक मनोवैज्ञानिकों (Nayman and Yacorzynski, 1942) ने उभयमुखी व्यक्तित्व (Ambivert Personality) की संज्ञा दी।

विजयलक्ष्मी (1996) द्वारा किए गए अध्ययन से भी यही ज्ञात हुआ है कि अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों की रूचि विज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र तथा लिपिकीय कार्यों में होती है। वहीं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों की रूचि यांत्रिक, व्यापार, सामाजिक एवं बाह्य कार्यों में होती है। अत: विज्ञान का ज्ञान दोनों प्रकारों के व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के लिए आवश्यक है और यह ज्ञान केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा ही सम्भव है।

एन.एस.एस.ई. (नेशनल सोसाइटी ऑफ द साइंस एजूकेशन) के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति में सहज जिज्ञासा, उच्च मनोवृत्ति, शुद्ध ज्ञान की इच्छा, ज्ञान प्राप्ति की इच्छा, ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में विश्वास तथा प्रमाणित ज्ञान द्वारा समस्या समाधान की आशा का गुण सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति में अंधविश्वासों से विमुखता, उदारमति, समस्याओं का हल ढूँढ़ सकने में विश्वास, प्रश्न करने का स्वभाव आदि गुण भी होते हैं। जिस प्रकार व्यक्तित्व के विकास मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना आवश्यक है उसी प्रकार आध्यात्मिक बुद्धि का होना भी आवश्यक

है। आकेब जावेद (2001) के शोध परिणाम स्पष्ट करते हैं कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ आध्यात्मिक बुद्धि का होना भी आवश्यक है क्योंकि व्यक्ति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास उसके मस्तिष्क की आध्यात्मिक शक्ति द्वारा होता है।

आध्यात्मिक बुद्धि के सम्प्रत्यय को दाना जोहर एवं इयान मार्शल (Dana Zohar & Ian Marshall 2000) ने दिया। उनके अनुसार आध्यात्मिक लब्धि (Spiritual Quotient. S.Q.) ही मानव प्रतिभा का अन्तिम सत्य है। यह अंतरंग एवं बहिरंग संतुलन को बनाए रखते हुए बुद्धिमत्ता एवं भावनापूर्ण कार्य करने की योग्यता है। इसके माध्यम से हम जीवन की परिस्थितियों में अर्थ-निरूपण, संदर्भीकरण एवं रूपान्तरण की प्रक्रियाओं को सहज रूप से विकसित कर लेते हैं।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिक सत्ता विद्यमान होती है अर्थात् वह प्राकृतिक रूप से आध्यात्मिक होता है जिसके कारण वह अपने जीवन के आधारभूत प्रश्नों से उलझता रहता है। जैसे. 'मैं कौन हूँ?', 'धरती पर मेरा क्या उद्देश्य है?', 'ऐसा मेरे साथ क्यों हुआ?', 'मैं खुश क्यों नहीं हूँ?', 'मेरे कार्य मुझे कहाँ ले जा रहे हैं?', 'मुझसे जुड़े लोगों की प्रसन्नता के लिए मैं क्या अतिरिक्त प्रयास कर रहा हूँ?', 'दूसरों की अपेक्षाओं की पूर्ति मैं किस सीमा तक कर पा रहा हूँ?' आदि। यदि इन प्रश्नों से उलझना आध्यात्मिक बुद्धि होने का संकेत है और यदि आध्यात्मिक बुद्धि एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध होना भी सत्य है, तो सभी व्यक्तियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्यों नहीं होता? अब प्रश्न यह उठते हैं कि व्यक्तित्व प्रकार किस प्रकार से आध्यात्मिक बुद्धि एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं? वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि किस प्रकार आपस में सम्बन्धित हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत शोध किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन करना।
2. व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना।
3. वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

1. अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. अन्तर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
4. अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
5. अन्तर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
6. बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
7. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आध्यात्मिक बुद्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रतिदर्श

मैनपुरी जिले में स्थित महाविद्यालयों में अध्ययनरत् 250 छात्राओं का प्रतिदर्श, आकस्मिक प्रतिदर्श विधि से, चयनित किया गया है। चयनित प्रतिदर्श में से अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वर्ग के चयन के निमित्त चयनित 250 छात्राओं के व्यक्तित्व सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन मान ज्ञात किया गया। अस्तु अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वर्ग के रूप में उन छात्राओं का चयन किया गया जिनके व्यक्तित्व सम्बन्धी प्राप्तांक क्रमशः (M-1s) से कम थे तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व वर्ग के रूप में उन छात्राओं का चयन किया गया जिनके व्यक्तित्व सम्बन्धी प्राप्तांक क्रमशः (M+1s) से अधिक हैं। शेष औसत व्यक्तित्व सम्बन्धी प्राप्तांकों को उभयमुखी व्यक्तित्व वर्ग में रखा गया। चयनित प्रतिदर्श का वितरण तालिका (1) में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका-1

चयनित प्रतिदर्श का व्यक्तित्व प्रकारों के अनुसार वितरण

व्यक्तित्व प्रकार	संख्या
कुल समूह	250
अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (M-1s)	59
बहिर्मुखी व्यक्तित्व (M+1s)	54
उभयमुखी व्यक्तित्व (औसत)	137

उपकरण

1. व्यक्तित्व के मापन हेतु, पी.एफ. अजीज एवं रेखा अग्निहोत्री (1991) द्वारा निर्मित इन्ट्रोवर्जन-एक्सट्रोवर्जन इन्वैन्ट्री।
2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मापन हेतु, डा. (श्रीमती) शैलजा भागवत (2006) द्वारा निर्मित शैलजा भागवत साइन्टिफिक एटीट्यूड स्केल।
3. आध्यात्मिक बुद्धि के मापन हेतु, प्रो. रोकिया जेनुद्दीन एवं अंजुम अहमद (2010) द्वारा निर्मित रोकन स्पिरीचुअल इन्टैलीजेन्स टैस्ट।

सांख्यिकीय विधियाँ

एकत्रित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

परिणाम

एकत्रित प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त जो परिणाम प्राप्त हुये वे निम्नलिखित हैं:

1. व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन करने हेतु अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। प्राप्त परिणामों को तालिका (2) में दर्शाया गया है।

तालिका (2) में प्रदर्शित परिणामों का गहनतापूर्वक अवलोकन करने से विदित होता है कि अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। इसी प्रकार अन्तर्मुखी, उभयमुखी तथा बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में भी कोई सार्थक अन्तर परिलक्षित नही हो रहा। अर्थात् तीनों व्यक्तित्व वर्ग वाली छात्राएं समान वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती हैं।

तालिका-2

अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
अन्तर्मुखी व्यक्तित्व	59	82.15	8.645	1.212	>.05
बहिर्मुखी व्यक्तित्व	54	84.035	7.895		
अन्तर्मुखी व्यक्तित्व	59	82.15	8.645	0.0074	>.05
उभयमुखी व्यक्तित्व	137	82.146	8.499		
बहिर्मुखी व्यक्तित्व	54	84.035	7.895	1.4568	>.05
उभयमुखी व्यक्तित्व	137	82.146	8.499		

2. व्यक्तित्व के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करने हेतु अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। प्राप्त परिणामों को अगले पृष्ठ पर तालिका (3) में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका (3) से स्पष्ट है कि अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व, अन्तर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व तथा बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है क्योंकि उक्त व्यक्तित्व वर्गों के लिए प्राप्त क्रान्तिक मान (क्रमशः 0.1497, 0.27027, 0.3630) .05 स्तर पर सार्थक नहीं है।

तालिका–3

अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
अन्तर्मुखी व्यक्तित्व	59	302.95	25.69	0.1497	>.05
बहिर्मुखी व्यक्तित्व	54	302.08	36.72		
अन्तर्मुखी व्यक्तित्व	59	302.98	25.69	0.27027	>.05
उभयमुखी व्यक्तित्व	137	304.0986	28.538		
बहिर्मुखी व्यक्तित्व	51	302.08	36.72	0.3630	>.05
उभयमुखी व्यक्तित्व	137	304.0986	28.538		

3. वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु निम्न एवं उच्च वैज्ञानिक दृष्टिकोण (क्रमशः $M-1\sigma$ एवं $M+1\sigma$) सम्बन्धी समूहों के आध्यात्मिक बुद्धि सम्बन्धी प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी। प्राप्त परिणामों का विवरण तालिका (4) में प्रस्तुत किया गया :

तालिका– 4

निम्न व उच्च वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि प्राप्तांकों के मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता स्तर
निम्न वैज्ञानिक दृष्टिकोण	56	303.42	32.052	.6745	>.05
उच्च वैज्ञानिक दृष्टिकोण	52	307.2	26.058		

उपर्युक्त तालिका–4 में प्रदर्शित परिणामों का गहनतापूर्वक अवलोकन करने से विदित होता है कि उच्च व निम्न वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि

में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। निष्कर्षत: कह सकते हैं कि उच्च व निम्न वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि समान होती है।

विवेचना

वर्तमान शोध अध्ययन के अन्तर्गत व्यक्तित्व के तीनों वर्गों, यथा- अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी एवं उभयमुखी वाली छात्राओं में समान वैज्ञानिक दृष्टिकोण पाया गया है। सम्भवत: इसका कारण वर्तमान युग का वैज्ञानिक होना तथा प्रत्येक व्यक्ति का रूढ़ियों व अंधविश्वासों को त्याग कर, वैज्ञानिक युग में प्रगति करना है। वर्तमान में छात्राओं को जो शिक्षा दी जा रही है, वह भी अंधविश्वासों से मुक्त है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विशेषताएँ व्यक्तित्व के सभी प्रकारों में भी भिन्न-भिन्न रूप में परिलक्षित हो रही हैं। अनोज राज (2009) ने भी अपने शोध परिणामों के आधार पर स्पष्ट किया है कि प्रयोगात्मक परीक्षा में अधिक व कम प्राप्तांक प्राप्त करने वाले विज्ञान विषय के विद्यार्थियों में समान व्यक्तित्व पाया जाता है। साथ ही सैद्धान्तिक परीक्षा में उच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले विद्यार्थी निम्न उपलब्धि प्राप्तकर्ता की अपेक्षा ज्यादा गम्भीर (reserve), संदेहशील (suspicious) एवं समझदार (apprehensive) होते हैं।

व्यक्तित्व प्रकारों एवं आध्यात्मिक बुद्धि में अन्तर न होने का सम्भाव्यमान कारण आध्यात्मिक बुद्धि का सामान्य बुद्धि की भाँति समस्त व्यक्तियों में पाया जाना है। विक्टर सेलमन एवं अन्य (2005) ने अपने अध्ययन में बताया कि मनुष्य ही एक मात्र ऐसा प्राणी है जिसमें सामान्य बुद्धि, संवेगात्मक बुद्धि एवं आध्यात्मिक बुद्धि पायी जाती है। टिरी एवं उनके साथियों (2005) के शोध परिणाम दर्शाते हैं कि विद्यार्थी के वैज्ञानिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति उनकी योग्यता पर निर्भर करती है।

प्रस्तुत शोध परिणामों की पुष्टि न्यूरो सायकोलॉजिस्ट माइकल एरिसिंगर व न्यूरोलॉजिस्ट वी.एस. रामचन्द्रन द्वारा किए गए शोध द्वारा भी हो सकती है। उन्होंने पाया कि मानव मस्तिष्क में ब्रह्मस्थान (गॉड स्पॉट) मौजूद है। यह ब्रह्मस्थान दोनों कनपटियों को जोड़ने वाली तंत्रिका में स्थित है। विशेषज्ञों ने शोध के दौरान पाया कि यदि व्यक्ति के साथ आध्यात्मिक विषय पर चर्चा के दौरान उसके मस्तिष्क का एक खास तरह का परीक्षण (पोजीशन टोपोग्राफी) किया जाये तो उसके गॉड स्पॉट की तंत्रिकायें जाग्रत हो उठती हैं। मसलन पश्चिमी लोगों के ब्रह्मस्थान, गॉड स्पॉट पर चर्चा के दौरान जाग्रत

मिले तो हिन्दू और बौद्ध व्यक्तियों के ब्रह्म स्थान उनकी आस्था प्रतीकों पर चर्चा के दौरान जाग्रत हो उठे। अत: स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिक बुद्धि होती हैं।

निम्न व उच्च वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाली छात्राओं की आध्यात्मिक बुद्धि समान होने का अनुमानित कारण यह हो सकता है कि आध्यात्मिक बुद्धि समस्त व्यक्तियों में पायी जाती है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण सभी व्यक्तियों में नहीं पाया जाता है। इसके साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति की उन्मुखता बाह्य जगत की ओर होती है जबकि आध्यात्मिक बुद्धि रखने वाले व्यक्ति की उन्मुखता आन्तरिक जगत की ओर होती है। एन.एच. लतीफा बेगम व समसानन्दा राज (2004) ने अपने शोध परिणामों के आधार पर स्पष्ट किया है कि अधिक आध्यात्मिक अभिविन्यास वाले अध्यापकों में कार्य के प्रति संतुष्टि अधिक पायी जाती है। इसके साथ ही विज्ञान वर्ग के अध्यापकों की अपेक्षा कला वर्ग के अध्यापकों में कार्य संतुष्टि अधिक पायी जाती है।

शैक्षिक महत्व

हमारी शिक्षा पद्धति पर ब्रिटिश शिक्षाशास्त्रियों का प्रभाव आज भी देखने को मिल जाता है जिसके कारण आज भी भारतीय शिक्षण व्यवस्था में कहीं न कहीं खामियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता, दोनों समावेशित हैं, जो प्रत्येक बालक को अपने परिवार से विरासत स्वरूप मिलती हैं, किन्तु आवश्यकता है तो मात्र उसे अनावृत करने की। चूँकि प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत सम्मिलित चरों, यथा- व्यक्तित्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि आदि के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया गया है। अत: प्रस्तुत शोध अध्ययन के परिणामों के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माताओं को यह सुझाव दिया जा सकता है कि वे पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक बुद्धि का विकास करने वाले विषयों को समाहित करें। क्योंकि शर्मा एवं सत्संगी (2010) ने अपने शोध अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया कि बालक के शैक्षिक निष्पादन पर सामान्य बुद्धि के साथ-साथ संवेगात्मक बुद्धि एवं आध्यात्मिक बुद्धि का भी समान प्रभाव पड़ता है। इस आधार पर विद्यालय में योग प्रक्रिया को समाविष्ट कर विद्यार्थी के जीवन में आध्यात्मिक सूत्रों का विकास किया जा सकता है और माता-पिता घर के वातावरण को आध्यात्मिक बनाकर बालकों के नैतिक एवं

आध्यात्मिक स्तर के विकास में सहयोग कर सकते हैं। क्योंकि बाली (2010) ने भी लंदन के बच्चों के बिगड़ते बचपन का कारण नैतिकता में गिरावट का होना पाया है। शाक्य (2008) के शोध परिणाम यह दर्शाते हैं कि एक शिक्षक के शिक्षण की प्रभावशीलता पर आध्यात्मिक बुद्धि अपना अपूर्व प्रभाव डालती है। अत: शिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों एवं छात्र अध्यापकों को आध्यात्मिक बुद्धि से सम्बन्धित तत्वों यथा–स्वचेतना जाग्रति, समस्या समाधान हेतु प्रयासरत् रहना, एकाग्रचितता, सम्भाव दृष्टि आदि गुणों को समावेशित कर शिक्षण प्रभावशीलता को बढ़ाना चाहिये।

चूँकि हमारी संस्कृति में भौतिकता भी परिलक्षित होती है, अत: विज्ञान का ज्ञान होना आज के युग की आवश्यकता है। इसलिये पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक साहित्य, वैज्ञानिकों की जीवनियाँ, विज्ञान सम्बन्धी अविष्कारों की कहानियाँ आदि को समावेशित कर बालकों को विज्ञान सम्बन्धी प्रायोगिक कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। फौली एवं मैकफी (2007) ने अपने शोध परिणामों के आधार पर स्पष्ट किया कि हैण्ड्स ऑन क्लासिज द्वारा सिखाने पर विद्यार्थियों में विज्ञान के प्रति रूचि को विकसित किया जा सकता है। विज्ञान से सम्बन्धित गोष्ठी, मेला, भ्रमण, विज्ञान संग्रहालय आदि का आयोजन करना चाहिए। बालकों के अंधविश्वासों को दूर कर उन्हें कार्य–कारण सम्बन्धों के विषय में बताना चाहिए।

निष्कर्ष

उपरोक्त उपलब्धियों के आधार पर निष्कर्षात्मक रूप से कहा जा सकता है:

1. व्यक्तित्व प्रकारों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. व्यक्तित्व प्रकारों एवं आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आध्यात्मिक बुद्धि में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

संदर्भ

अजीज, पी.एफ. एवं अग्निहोत्री, रेखा (1991): मैनुअल फॉर इन्ट्रोवर्जन–एक्सट्रोवर्जन इन्वैन्ट्री. आगरा: नेशनल साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन.

गैरेट, एच0ई0 (1985): स्टेटिस्टिक इन साइक्लोजी एण्ड एजूकेशन. मुम्बई: वकील्स फीफर एण्ड साईमोन्स लिमिटेड.

जावेद, आकेब (2001): साइंस एण्ड वेल्यूज. द प्राइमरी टीचर, जुलाईय पृ0 22–23.

जेनुद्दीन, रोकिया एवं अहमद, अंजुम (2010): मैनुअल फॉर रोकन स्पिरीचुअल इन्टेलीजेन्स टेस्ट. आगरा: नेशनल साइकॉलोजीकल कॉरपोरेशन.

ज़ोहर, दाना एण्ड इयान मार्शल (2000): एस.क्यू. : स्पिरीचुअल इन्टैलीजेन्स, द अल्टीमेट इन्टेलीजेन्स, न्यूयोर्क; ब्लूम्सबरी प्रैस.

टिरी, किर्सी एवं अन्य (2005): ए क्रॉस कल्चर स्टडी ऑफ प्री- अडोलीसेन्ट्स मोरल, रिलीजियस एण्ड स्पिरीचुअल कोष्यन्स. ब्रिटिश जर्नल ऑफ रिलीजियस एजूकेशनय वॉ-27य पृ0 207-214.

नेमैन एण्ड येकोरजिन्सकी (1942): सन्दर्भित आर.एन. सिंह, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान; आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर 2001: पृ0सं0 309.

फोली एवं मैकफी (2008): स्टूडेन्ट्स एटीट्यूड टूर्वाड्स साइन्स इन क्लासिज यूजिंग हेन्ड्स ऑन ऑर टैक्स्ट बुक बेस्ड करीकुलम. नेशनल सांइस फाउन्डेशन, इ0एच0आर0 त्म्ब 9980494 E-mail- brian.foley@csun.edu

बेगम, लतीफा एवं राज, एन0एच0 सम सानन्दा (2004): जॉब सेटिस्फेक्शन एण्ड स्पिरीचुअलिस्टिक ओरिएन्टेशन एमंग कॉलेज टीसर्च. प्राची जर्नल ऑफ साइको-कल्चरल डाइमेन्शन्सय वॉ-20 (1)य पृ0 43-49.

बंसल, अजय कुमार (2007): हाऊ ई0 क्यू एण्ड एस0क्यू अफैक्ट्स द साइंस अचीवमैन्ट ऑफ द सेकण्डरी लेवल स्टूडेन्ट्स. इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशनय वॉ-38 (1)य पृ0 92-93.

बेस्ट, जॉन डब्ल्यू एवं खान, जेम्स वी0 (2004): रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली रू प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा0 लि0.

भागवत, शैलजा (2006) : मैनुअल फॉर शैलजा भागवत सांइटिफिक एटीट्यूड स्केल. आगरा: नेशनल साइकोलोजिकल कॉरपोरेशन.

युंग, सी0जी0 (1923): साइकोलॉजिकल टाइप्स. रोटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटिड; पृ0 654.

राज, अनोज (2009) : पर्सनैलिटी ट्रेट्स ऑफ साइन्स इन रिलेशन टू देयर अचीवमेन्ट इन प्रैक्टिकल एण्ड थ्योरी. इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशनय वॉ-40 (1 व 2); पृ. 125-129.

वर्मा, पूजा एवं शर्मा इन्द्रा (2011): इमोशनल एण्ड स्पिरीचुअल इन्टैलीजेन्स एज डिटर्मिनेन्ट्स ऑफ ईको फ्रेन्डली बिहेविअर. डी0ई0आई0 फोएरा; फोर्थ एनुअल इशु: जनवरी; पृ0 157-158.

विजयलक्ष्मी (1996): ए स्टडी ऑफ इन्टरैस्ट ऑफ एकस्ट्रोवर्ट एण्ड इन्ट्रोवर्ट कॉलेज स्टूडेन्ट्स. प्रार्ची जर्नल ऑफ साइको कल्चरल डाइमेन्शन्सय वॉ-12 (1)य पृ0 27-30.

शर्मा, अनुज दत्त एवं सत्संगी, रणजीत (2010): रोल ऑफ जर्नल इन्टैलीजेन्स, इमोशनल इन्टैलीजेन्स

एण्ड स्पिरीचुअल इन्टैलीजेन्स एज डिटर्मिनेन्ट्स ऑफ एकेडेमिक परफोंमेन्स एट सीनिअर सेकण्ड्री लेवल. डी.ई.आई. फोएरा; थर्ड एनुअल इशु: जनवरी; पृ0 53-54.

सेलमैन, विक्टर (2005)रू स्पिरीचुअल इन्टैलीजेन्स/- कोशिएंट: कॉलेज टीचिंग मैथड एण्ड स्टाइल्स।

जर्नल- थर्ड क्वार्टर 2005य वॉ-1 (3).

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

शोध टिप्पणी/संवाद

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध

रेशमा बानो* और **बीरमती सिंह****

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध खोजने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के न्यादर्श में 600 विद्यार्थी हैं, जिसमें 300 छात्र तथा 300 छात्राएँ हैं। अध्ययन के परिणामों से ज्ञात हुआ माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है, किन्तु विविध संवेगात्मक स्तरों पर उनकी उपब्धि में सार्थक अन्तर हैं। उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्र तथा एवं छात्राओं की अपेक्षा अधिक है। प्रस्तुत परिणाम विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निर्धारित करने में संवेगात्मक बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका इंगित रहे हैं।

विद्यार्थियों की सफलता अनेक कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें उनके व्यक्तिगत तथा वातावरणीय दोनों प्रकार के कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विद्यार्थियों का बौद्धिक स्तर, अभिक्षमता, स्वास्थ्य, भाव, मूल्य एवं संवेग, उपलब्ध संसाधन, अभिभावकों की देखरेख, अध्ययन आदतों का निर्देश आदि अनेक कारक हैं, जो उनकी उपलब्धि को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इन सभी कारकों में बुद्धि को अभी तक सर्वप्रमुख स्थान दिया जाता था। यह माना जाता था जिनमें सीखने की क्षमता, तार्किक योग्यता, अमूर्त चिन्तन की योग्यता उच्च कोटि की होगी वे अध्ययन में भी उच्च परिणाम प्राप्त करेंगे। इस सम्बन्ध में अनेक अध्ययन भी हुये तथा बुद्धि एवं

* प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, यूनिटी डिग्री कॉलेज, लखनऊ
** निदेशक, एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन, एमिटी यूनिवर्सिटी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

उपलब्धि में सकारात्मक सम्बन्ध पये गये। किन्तु विगत कुछ वर्षों से इस विचारधारा में तीव्रता से परिवर्तन हुआ है। गार्डेन (1983) के बहु बुद्धिकारक सिद्धान्त तथा साल्वे (1990) के संवेगात्मक बुद्धि के सिद्धांत ने सफलता के निर्धारण में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है इन विचारकों का मानना है कि व्यक्ति की सफलता उसकी बुद्धि पर ही निर्भर करती, बल्कि सफलता का अधिकतम श्रेय उसकी सामाजिक एवं संवेगात्मक बुद्धि को जाता है। उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थी स्वयं को प्रत्येक परिस्थिति में समायोजित कर लेते हैं, तथा घर, विद्यालय, समाज, कार्यस्थल आदि सभी स्थानों पर अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन करते हैं। उचित सांवेगिक प्रबन्ध उनके चिन्तन में सहायक होता है, जिसके परिणास्वरूप वे अपनी समस्याओं और विषयगत कठिनाइयों को सहज ही हल कर लेते हैं। जैगर (2001) और स्टौटिल्मेयर (2002) ने संवेगात्मक बुद्धि एवं उपलब्धि में सकारात्मक सम्बन्ध पाया है।

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उनके माता-पिता एवं अभिभावकों के लिये सदा से चिन्ता के विषय रहे हैं, क्योंकि यह उनके जीवन की दिशा निर्धारित करती है तथा उनेक भावी लक्ष्य को पाने में सहायक होती है। शिक्षा का माध्यमिक स्तर विद्यार्थी जीवन का निर्णायक काल होता है। इस समय वे अपने भावी जीवन एवं व्यवसाय सम्बन्धी निर्णय लेते हैं। उच्चकोटि की शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों के विषय चयन सम्बन्धी निर्णय लेने में सहायक होती है, तथा उन्हें उनेक लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है। अनुसन्धानों से स्पष्ट है शैक्षिक उपलब्धि किसी एक कारक से नहीं, बल्कि अनेक कारकों से प्रभावित होती है। इनमें बुद्धि (श्रीवास्तव एवं सिमहादरी, 1979 ट्रैमा, 1998, बेगम और फुकन, 2001), लिंग (सुनिथा और मयूरी, 2001, गर्सिया 2002), अभिभावक संलग्नता (मोहम्मद, 1996 जरोम, 206) पारिवारिक सहायोग (अल सईदी 2002) पारिवारिक वातावरण (अहमद, 2008) विद्यार्थियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर (एविला 2002) विद्यार्थियों की सर्जनात्मकता एवं सामाजिक आर्थिक स्तर (आलम, 209) आदि प्रमुख कारक हैं जो विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। जैगर (2001) स्टौटिल्मेयर (2002), लिआँग (2007) तथा राइस (2007) ने संवेगात्मक बुद्धि तथा उपलब्धि के मध्य भी सकारात्मक सम्बन्ध पाया है, वहीं वोटिसकी (2001) को इन दोनों मध्य किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं मिला है। स्पष्ट है विद्यार्थीयों की उपलब्धि में संवेगात्मक बुद्धि की भूमिका विवदास्प्रद है तथा इन दोनों

के मध्य सम्बन्ध बहुत स्पष्ट नहीं है। क्योंकि संवेगात्मक प्रबन्ध विद्यार्थियों के स्पष्ट चिन्तन एवं ज्ञानार्जन में सहायक होता है, अत: माध्यमिक स्तर के किशारों के अध्ययन एवं उपलब्धि में इसकी सार्थक भूमिका होनी चाहिये। प्रस्तुत अध्ययन में इसी सम्बन्ध को खोजने का प्रयास किया गया है।

संवेगात्मक बुद्धि के द्वारा व्यक्ति अपने संवेगों को पहचानता है, संवेगों का उचित प्रकटीकरण करता है, दूसरों के संवेगों को समझकर उसके सामने वैसा ही व्यवहार है।

सालवे और मायर (1990) के अनुसार ''संवेगात्मक बुद्धि स्वयं तथा दूसरों की भावनाओं और संवेगों का निरीक्षण करने तथा इनके मध्य विभेद करने के योग्य बनाती है और इसकी प्रयोग स्वयं के विचारों और क्रियाओं को दिशा प्रदान करने में किया जाता है।''

गोलमेन (1995) के अनुसार, ''संवेगात्मक बुद्धि वह योग्यता है जिसमें आत्मजागरूकता, मनोवेग सन्तुलन, दृढ़ता, उत्साह, आत्मप्रेरणा, तद्नुभूति और सामाजिक कुशलता को सम्मिलित किया जा सकता है।''

इस अध्ययन की समस्या को उपयुक्त शब्दो में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है।

''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध: एक अध्ययन''

प्रमुख चरों की परिभषा

माध्यमिक स्तर: इस अध्ययन में माध्यमिक स्तर के अन्तर्गत कक्षा–11 के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

संवेगात्मक बुद्धि: संवेगात्मक बुद्धि वह बुद्धि है जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने भावों एवं संवेगों का उचित प्रकटीकरण एवं नियन्त्रण करता है तथा दूसरे की भावनाओं एवं संवेगों का सम्मान करता है।

शैक्षिक उपलब्धि

प्रस्तुत अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि का तात्पर्य विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त माध्यमिक शिक्षा

बोर्ड के हाई स्कूल के प्राप्ताकों से है जो विद्यार्थियों के उच्च या निम्न शैक्षिक स्तर के सूचक हैं।

उद्देश्य

1. माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना करना।
2. माध्यमिक स्तर के उच्च तथा निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना करना।
3. माध्यमिक स्तर के उच्च तथा निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना करना।
4. माध्यमिक स्तर के उच्च तथा निम्न संवेगात्मक बुद्धि की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि की तुलना करना।

परिकल्पनायें

1. माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होगा।
2. माध्यमिक स्तर के उच्च तथा निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होगा।
3. माध्यमिक स्तर के उच्च तथा निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होगा।
4. माध्यमिक स्तर के उच्च तथा निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर होगा।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत अनुसन्धान का प्रारूप घटनोत्तर अनुसन्धान है।

न्यादर्शः प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत लखनऊ नगर के माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं अनुदान प्राप्त विद्यालय के कक्षा 11 के 600 विद्यार्थी सम्मिलित किये गये हैं। अध्ययन में द्विस्तरीय न्यादर्श चयन विधि अपनाई गई है। प्रथम स्तर पर सरकारी विद्यालयों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा तथा 16 अनुदान प्राप्त विद्यालयों का चयन क्रमबद्ध यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

द्वितीय स्तर पर चयनित विद्यालयों में से 300 छात्र तथा 300 छात्राओं का चयन क्रमबद्ध यादृच्छिक विधि द्वारा किया गया।

उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के एकत्रीकरण हेतु संवेगात्मक बुद्धि उपकरण (रेशमा बानो द्वारा निर्मित) तथा शैक्षिक उपलब्धि को ज्ञात करने हेतु विद्यार्थियों के यू. पी. बोर्ड द्वारा हाईस्कूल स्तर पर प्राप्त अंकों को सम्मिलित किय गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण: प्रदत्तों के विश्लेषण के लिये टी परीक्षण प्रयुक्त किया गया।

परिणाम

प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार प्राप्त परिणाम तालिका में प्रस्तुत है:

क्र. सं.	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य	सार्थकता स्तर
1	छात्रायें	300	308.70	38.17	1.79	p>0.05
2	छात्र	300	314.73	44.03		
3	उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थी	299	318.58	42.62	4.11	P>0.05
4	निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थी	301	304.90	38.79		
5	उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्र	159	317.79	46.15	2.14	P>0.05
6	निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्र	141	309.04	40.94		
7	उच्च संवेगात्मक बुद्धि की छात्राएं	140	317.21	38.33	3.68	P>0.05
8	निम्न संवेगात्मक बुद्धि की छात्राएं	160	301.26	36.56		

परिणाम एवं परिणामों की व्याख्या

परिणाम तालिका के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि छात्राओं तथा छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान क्रमश: 308.70 एवं 314.73 और मानक विचलन क्रमश: 38. 17 एवं 44.03 है इन दोनों समूहों की शैक्षिक उपलब्धि के अन्तर का टी मूल्य 1.79 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर की छात्राओं एवं छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकृत की जाती है तथा यह कहा जा सकता है कि छात्राओं एवं छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर नहीं है।

उपरोक्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर की छात्राओं एवं छात्रों की उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं है। छात्राओं एवं छात्रों की उपलब्धि एक समान होने का कारण समाज का बदला हुआ परिवेश हो सकता है। प्राचीन समय में माता-पिता बालिकाओं की शिक्षा के प्रति उदासीन थे। वे बालिकाओं को केवल गृह कार्य में दक्ष करना ही अपना उत्तरदायित्व मानते थे, किन्तु अब उनमें जागरूकता आ गयी है। अब बालिकायें भी आत्मनिर्भर बनना चाहती हैं तथा उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। वे स्वयं को समाज का अहम अंग समझने लगी हैं, तथा समाज की उन्नति में स्वयं भी योगदान देने की आकांक्षा रखती हैं। सम्भवत: इसी कारण वे शिक्षा एवं उपलब्धि के प्रति अत्यन्त सजग एवं प्रयत्नशील हो गयी हैं। परिणाम स्वरूप उनकी उपलब्धि बालकों के समकक्ष आयी है। अभिभावकों द्वारा बालिकाओं को उनके अध्ययन में दी जाने वाली सुविधायें एक अन्य कारण हो सकता है। वर्तमान समय में अभिभावक बालिकाओं को भी उत्तम शैक्षिक सुविधायें प्रदान करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनकी उपलब्धि सकारात्मक रूप से प्रभावित होती है। प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम बरका (2003) के परिणाम के अनुरूप हैं, जहाँ भी शैक्षिक उपलब्धि में लिंग संबंधी अन्तर देखने के नहीं मिले हैं। गर्सिया (2002) ने भी गणित विषय की उपलब्धि में निम्न संबंध ी अंतर नहीं पाया है, यद्यपि भाषा वाचन में बालकों से श्रेष्ठ पायी गई हैं। माथुर मल्होत्रा और दूबे (2005) तथा सुनीता तथा मयूरी (2001) के अध्ययन के परिणाम के अनुरूप नहीं है, जहाँ बालक-बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर देखने को मिला है तथा बालिकाओं ने बालकों की अपेक्षा उच्च अंक प्राप्त किये हैं। यद्यपि इस प्रकार के विरोधी परिणामों की व्याख्या कठिन है किन्तु स्थिति एवं न्यादर्श में भिन्नता इसका कारण माना जा सकता है।

परिणाम तालिका के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि उच्च संवेगात्मक बृद्धि के विद्यार्थियों के मध्यमान क्रमश: 318.58 एवं 304.90 और मानक विचलन क्रमश: 42.62 एवं 38.79 है। इन दोनों समूहों के शैक्षिक उपलब्धि क अन्तर का टी मूल्य 4. 11 है 0.05 स्तर पर सार्थक है अत: यह शून्य परिकल्पना की माध्यमिक स्तर के उच्च संवेगात्मक बुद्धि एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों कि शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है, तथा यह कहा जा सकता है कि उच्च संवेगात्मक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगामक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक अच्छी है।

परिणामों से स्पष्ट है कि उच्च संवेगात्मक बुद्धि एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है तथा उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है। स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों में उनकी संवेगात्मक बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका है। संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक संबंध पाया गया है। (जैगर, 2001, स्टौटिल्मेयर, 2002)। उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थी आत्मविश्वासी होते है तथा वे अपने कार्य एवं उपलब्धि के प्रति सजग रहते है। इनमें नकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव होता है जो इनकी उपलब्धि को उच्च बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे विद्यार्थी क्रोध, चिन्ता, भय, अविश्वास आदि को संयमित करने में सक्षम होते हैं, तथा इन्हें स्वयं पर विश्वास होता है कि वह कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित कर लेंगे। यह दृष्टिकोण उन्हें स्वावलम्बी बनाता है जिसके फलस्वरूप उनमें सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है जो उनकी उपलब्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पुन: जिन विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि उच्च कोटि की होती है उनमें स्वयं एवं परिस्थिति के साथ स्वयं को परिवर्तित करने का भी गुण पाया जाता है जो प्रत्येक व्यक्ति की सफलता का मूल है। यदि व्यक्ति स्वयं को समय के साथ बदलता है तथा समाज के साथ चलता है तो वह प्रगति के मार्ग पर अग्रसर रहता है। निम्न संवेगात्मक बुद्धि के बालकों में इन गुणों का अभाव पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप उच्च संवेगात्मक एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया जाता है। जैगर, 2001, स्टौटिल्मेयर, 2002, लिऑग, 2007 तथा राइस (2007) के अध्ययन में भी शैक्षिक उपलब्धि एवं

संवेगात्मक बुद्धि के मध्य सकारात्मक संबंध पाया गया है, तथा उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि उच्च पायी गयी है जिसके द्वारा प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों की पुष्टि हो रही है।

परिणाम तालिका से ज्ञात होता है कि उच्च संवेगात्मक बुद्धि के निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों के मध्यमान क्रमशः 319.79 और 309.04 और मानक विचलन क्रमशः 46.15 एवं 40.94 हैं। इन दोनों समूहों के शैक्षिक उपलब्धि के अन्तर का टी मूल्य 2. 14 है, जो 0.05 स्तर पर सार्थक है। अतः यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर के उच्च संवेगात्मक बुद्धि एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का सार्थक अन्तर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है, तथा यह कहा जा सकता है कि उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की अपेक्षा उच्च है।

उच्च संवेगात्मक बुद्धि एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है जिससे स्पष्ट होता है कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने में उनके संवेगात्मक स्तर की महत्वपूर्ण भूमिका है। उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्र स्वयं के संवेगों के प्रति जागरूक होते हैं। वे अपने क्रोध, घृणा, चिन्ता, ईर्ष्या की भावना को नियन्त्रित करने में सक्षम होते हैं जिसके फलस्वरूप वे अपने अध्ययन में किसी प्रकार के मानसिक तनाव को उपस्थित नहीं होने देते हैं, तथा अपना सम्पूर्ण ध्यान अपने अध्ययन के प्रति केन्द्रित रखते हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वयं के लक्ष्यों के प्रति भी आत्म प्रेरित रहते हैं। वे जो लक्ष्य निर्धारित करते हैं, उसके प्रति आशावादी होते हैं। इसके विपरीत निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थी स्वयं के संवेगों को नियन्त्रित नहीं कर पाते हैं, तथा मानसिक तनाव से ग्रसित हो जाते हैं जो उनके अध्ययन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

परिणाम तालिका के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि उच्च संवेगात्मक बुद्धि एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्राओं का मध्यमान क्रमशः 317.21 एवं 301.26 और मानक विचलन क्रमशः 38.33 एवं 36.66 है। इन दोनों समूहों के शैक्षिक उपलब्धि के अन्तर का टी मूल्य 3.68 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक है। अतः यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर की उच्च संवेगात्मक बुद्धि एवं निम्न संवेगात्मक बुद्धि की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, अस्वीकृत की जाती है, तथा यह

कहा जाता है कि उच्च संवेगात्मक बुद्धि की छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि की छात्राओं की अपेक्षा उच्च है।

संवेगात्मक बुद्धि तथा उपलब्धि के संबंध में प्राप्त परिणाम छात्र तथा छात्राओं में एक समान है, तथा इस संबंध में कोई लिंग भेद नहीं है। उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों के समान उच्च संवेगात्मक बुद्धि की छात्राओं की उपलब्धि न्यून संवेगात्मक बुद्धि वाली छात्राओं की अपेक्षा उच्च है।

सम्भवतः संवेगात्मक बुद्धि के अंतर्गत आने वाली योग्यतायें छात्र एवं छात्राओं में एक समान है जिनका समान प्रभाव उनकी उपलब्धि पर पड़ रहा है।

निष्कर्ष

1. माध्यमिक स्तर के छात्र तथा छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की अपेक्षा उच्च है।
3. माध्यमिक स्तर के उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि के छात्रों की अपेक्षा उच्च है।
4. माध्यमिक स्तर के उच्च संवेगात्मक बुद्धि के छात्राओं की भी शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि की छात्राओं की अपेक्षा उच्च है।

शैक्षिक निहितार्थ सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त परिणाम यह इंगित करते हैं कि माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर नहीं है। अतः छात्राओं के लिए अलग से शिक्षण सुविधायें एवं शैक्षिक वातावरण प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। छात्र तथा छात्राओं को एक समान शैक्षिक वातावरण एवं शैक्षिक सुविधायें प्रदान करके उनकी उपलब्धि को उच्च बनाया जा सकता है।

प्राप्त परिणाम यह इंगित करते हैं कि उच्च संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च है जिससे यह

स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में उनकी संवेगात्मक बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका है। अत: विशेष प्रशिक्षणों द्वारा उनकी संवेगात्मक बुद्धि को उच्च बनाने का प्रयास किया जाए।

निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों के अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों के संवेगात्मक स्तर को उच्च बनाने के लिए घर का वातावरण उत्तम बनायें तथा बच्चों को तनाव एवं कुण्ठा से दूर रखें वे अपनी उच्च आकांक्षाओं को अपने बच्चों पर न थोपें क्योंकि यदि वे अपने बच्चों की क्षमता से अधिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उन पर दबाव बनायेंगे तो सम्भव है कि उनके बच्चे तनाव एवं कुण्ठा से ग्रसित हो जायेंगे तथा उनका संवेगात्मक स्तर प्रभावित हो जो उनकी उपलब्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डाले।

निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों के लिए विद्यालय में संवेगात्मक बुद्धि के प्रशिक्षण हेतु कार्यशाला आदि का आयोजन किया जाये जिससे वे सभी दक्षतायें उनमें विकसित हों सके जो चिन्तन एवं शैक्षिक विकास में सहायक हो।

शिक्षकों को चाहिए कि निम्न संवेगात्मक बुद्धि के विद्यार्थियों के सामाजिक विकास हेतु कक्षा में विद्यार्थियों के लिए सामूहिक शिक्षण वाद-विवाद प्रतियोगिता एवं खेलों का आयोजन करें।

संदर्भ

अहमद, एस एंड सिन्हा, आर. (2008), ए स्टडी ऑफ अडोलेसेंस इफैक्ट ऑफ सुटेबल एंड नॉट सुटेबल होम इनवायरमेंट ऑन देयर एकेडमिक अचीवमेंट. इन इंडियन सायकोलॉजीकल रिव्यू 72(1), 35-39

अल सैदी, एफ.ए.एच., (2000), अकादमिक अचीवमेंट केस स्टडी ऑफ ए ग्रुप ऑफ येमिनी वूमन इन डिजरटेशन अब्स्ट्रक्ट इंटरनेशनल, 2001, 61 (II), 4253।

अवीला, आई.आर. (2002), स्टडी एटीट्यूट एस्पाइरेशन एंड एकेडमिक अचीवमेंट इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 2002, 63 (4), 1194।

बारका, डी. (2003), द रिलेशनशिप ऑफ एज एंड जेण्डर ऑफ एलिमेंट्री स्कूल चिल्ड्रन टू एकेडमिक अचीवमेंट इन डिजरटेशन अब्स्ट्रक्ट इंटरनेशनल, 2003, 64(6), 2955।

बेगम, टी.एस. एंड फुकन, एम. (2000) एकेडमिक अचीवमेंट एंड इंटलीजेंस: ए कोरेलेशन स्टडी इन ब्याइज एंड गर्ल्स। इंडियन सायकोलॉजीकल रिव्यू। 156 (2) 103-106

गर्सिया, जे.ए. (2002), सेक्स डिफरेंशेज इन एकेडमिक अचीवमेंट इन अर्बन/सब अर्बन स्कूल

डिस्ट्रिक्ट। इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 2002 63 (3), 850।

गोलेमन, डी. (1995), द नेचर ऑफ इमोशनल इंटेलीजेंस, न्यूयार्क: बंटम बुक्स 95-102

गोलेमन डी. (1995) इमोशनल इंटेंलीजेंस, न्यूयार्क: बटमैन बुक, 38

जैगर, ए.जे. (2001) इमोशनल इंटेलीजेंस, लर्निंग स्टाइल एंड एकेडमिक परफारमेंस आफ ग्रेजुएट स्टडीज इन प्रोफेशनल स्कूल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 2001, 62 (2), 486।

जैरोम, बी.पी. (2006) द रिलेशनशिप ऑफ पेरैन्ट इन्वाल्वमेंट आन स्टूडेंट अचीवमेंट इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 2006, 67 (10), 3666।

लियांग, वाई.एच. (2007), इमोशनल इंटैलिजेंस एंड लीडरशिप इन ताइवानीज युनिवर्सिटीज स्टूडेंट। इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट्स इंटरनेशनल, 2002, 68 (10), 4154।

मेयर, जे.डी. एंड साल्वे, पी. (1997) व्हट इज इमोशनल इन्टेलिजेंस? इन पी. सॉल्वे एंड डी. स्लूयटर (एड.) इन पी. साल्वे, एम.ए. ब्रैकेट एंड जे.डी. मायर (एड.) इमोशनल इंटेलीजेंस: की रीडिंग ऑन द मेयर एंड सॉल्वे मॉडल, न्यूयार्क: दूबे पब्लिशिंग कम्पनी।

मेयर, जे.डी., कारूसो, डी. एंड साल्वे, पी. (1999) इमोशनल मीट्स ट्रेडिशनल स्टेंडर्स फॉर इन्टेलिजेंस। इन पी. सॉल्वे, एम.ए. ब्रेकेट एंड जे.डी. मेयर (एड.) इमोशनल इंटेलीजेंस: की रीडिंग ऑन द मेयर एंड सॉल्वे मॉडल, न्यूयार्क: दूबे पब्लिशिंग कम्पनी।

मोहम्मद ए.एस. (1996) द इफैक्ट ऑफ फैमिली बैकग्राउण्ड ऑन एकेडमिक अचीवमेंट एंड अटीट्यूट टूवार्ड लर्निंग ऑफ सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेंट्स इन बोत्सवान्स एंड घाना इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 1997, 57(7), 2789।

राइस, डी.एम., (2007) एन इक्जामिनेशन ऑफ इमोशनल इंटेलिजेंस: इट्स रिलेशनशिप टू एकेडमिक अचीवमेंट इन आर्मी जेआरओटीसी एंड द इम्पिलीकेशन फार एजुकेशन इन डिजरटेशन अब्स्ट्रक्ट्स इंटरनेशनल, 207, 67(10), 3701।

श्रीवास्तव, ए.के. एंड सिमादरी, आर.ए. (1979) टेस्ट ऑफ रीडिंग रेडिनैस एंड मेंटल एबिलिटी इन फर्स्ट जनरेशन लर्नर। इन बुच, एम.बी. (एड.) थर्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन (1986) Vol. II, नई दिल्ली: एनसीईआरटी 507

स्टॉलेम्यर, बी.जी. (2002) एन एक्जामिनेशन आफ इमोशनल इंटैलिजेंस: इज रिलेशनशिप टू अचीवमेंट एंड द इंपलीकेशन फार एजुकेशन इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट्स इंटरनेशनल, 2002, 63 (2), 571।

सुनीता, बी एंड मयूरी, के. (2001), ए स्टडी ऑन एज एंड जेंडर डिफरेंशेज ऑन द फैक्टर अफैक्टिंग हाई एकेडमिक अचीवमेंट, जर्नल ऑफ कम्यूनिटी गाइडेंस एंड रिसर्च, 18 (2), 197-208

ट्रामा, एस. (1998) ए स्टडी आफ एकेडमिक अचीवमेंट इन रिलेशन टू इंटैलिजेंस पेरेंटल इन्वॉल्वमेंट एंड चिल्ड्रन्स मोटिवेशनल रिसोंशेस: कंट्रोल अंडरस्टैंडिंग, पर्सिव्ड कम्पेटेंस एंड सैल्फ-रेगुलेशन एट अपर एलिमेंट्री एंड सेकेण्डरी स्कूल लेवल इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट इंटरनेशनल, 2002, 62(10), 4822।

वोट्सजेवस्की, एस.ए. (2001) द कंट्रीव्यूशन आफ इमोशनल इंटैलीजेंस टू द सोशियल एंड एकेडमिक सक्शेस आफ गिफ्टेड अडोलेसेंट। इन डिजरटेशन अब्स्ट्रैक्ट्स इंटरनेशनल, 2001, 62(1), 81।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

चिन्तक और चिन्तन

त्सुनेसाबुरी माकीगुची का शिक्षा दर्शन

बलविन्दर कुमार* और **रोथास कुमार सुथर****

विश्व में बहुत कम लोग हैं जो जापान के महान शिक्षा-दार्शनिक त्सुनेसाबुरो माकीगुची के बारे में जानते हैं। जिस प्रकार महात्मा गाँधी जी ने अपने जीवन की सच्चाईयों को अपनी आत्मकथा व पत्रों में दिया है उसी प्रकार माकीगुची ने भी अपने जीवन की सच्चाईयों को नोट्स के रूप में प्रस्तुत किया। जब उन्हें लगा कि ये नोट्स शिक्षाविदों के लिए ही नहीं बल्कि आमजन के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं, ऐसा विचार करने पर उन्हें प्रकाशित करवाने का मन बनाया लेकिन धनाभाव के कारण काफी चिन्ता में रहे। ऐसे समय में उनके दोस्त जैसे टोडा, सोका क्योईकु गाक्कई ने दोस्तों से राशि जुटाकर नोट्स को पुस्तक का रूप दे दिया जिसे 'एजुकेशन फॉर क्रिएटिव लिविंग' अर्थात 'सृजनशील जीवन और शिक्षा' का नाम दिया। इस उपर्युक्त बात को स्वयं माकीगुची ने 1930 में इस पुस्तक की भूमिका में स्वयं लिखा है, ''यादों, विचारों और चिन्तनों का एक भण्डार है जो मैंने अपने दैनिक दायित्वों के निर्वाह में संजोया है, यह आलेख उन्हीं का विवरण है। जहाँ मेरे व्यवसाय के व्यापारी-प्रवृत्ति वाले सदस्यों ने संजोया है, अपना समय धन संबंधी चिन्ताओं में बिताया है, वहाँ मैंने अपने अनुभवों के निचोड़ को नोट्स की शक्ल देने में सफलता प्राप्त की है। अपने तीस साल के शैक्षणिक जीवन में छोटे-छोटे कागजों का एक पहाड़ इकट्ठा किया है। मैं मानता हूँ कि इनमें कुछ तो अपनी परिकल्पना में प्रेरणा विहीन है। मगर बाकी को रद्दी की टोकरी में फेंकना उचित नहीं होगा। अर्थात माकीगुची ने शिक्षा को कभी व्यवसाय के रूप में नहीं देखा। उन्होंने तो शिक्षा को एक ऐसा रूप देना चाहा है जो सबके लिए हो और हितकारी भी हो। जो शिक्षक इसे व्यवसाय मानते हैं वे शिक्षक न रहकर पैसों की मशीन

* सहायक प्रोफेसर, मीरा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, सरदूलेवला (पंजाब)
** सह प्रोफेसर (दर्शन शास्त्र) राजकीय कॉलेज, अदमपुर (हरियाणा)

बन जाते हैं। ऐसी मशीन का समाज में कोई महत्व नहीं होता। इस विचार ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा कि कभी न कभी इसे संजोना होगा। साथ-साथ मुझे यह भी पता था कि निजी सार्वजनिक कार्यों की व्यस्तता के कारण मैं ऐसा नहीं कर पाऊंगा। इस कार्य के लिए मुझे बहुत ज्यादा समय की जरूरत है लेकिन फिर भी 20 वर्ष तक इसपर कुण्डली मारे बैठा रहा। मैं यह भी सोचता रहता था कि इस कच्चे माल को बाजार में न लाना स्वयं मेरे लिए ही अफसोसजनक है। जब मैंने इसे बार-बार अध्ययन किया तो पूरा चिन्तन मेरे दिमाग में एक सुविकसित शैक्षिक सिद्धान्त के रूप में छप गया। मेरी पहली पुस्तक ज्योग्राफी आफ ह्यूमन लाइफ (Geography of Human Life) जोन्स टोडा व अन्य साथियों ने धनराशि जुटाकर पूरा करवाया और मेरी इस परियोजना को पूरा किया। इस पर माकीगुची ने कहा, ''शिक्षा वह विज्ञान है जो शिक्षकों में व्यक्तिगत मूल्य उजागर करने को अर्पित है और ये शिक्षक फिर शिक्षार्थियों को मूल्य सृजन की ओर दिशान्वित करेंगे। यही मेरा उद्देश्य है और रहेगा।

माकीगुची का जन्म 1873 में उत्तर पश्चिम जापान के एक छोटे से गांव में हुआ। इनका परिवार निर्धन परिवारों में से था। जब वे तीन वर्ष के थे तब उनके पिता ने पत्नी सहित उन्हें त्याग दिया। इनकी माता इस बात से इतनी आहत हुईं कि अपने प्यारे से बच्चे को गोद में लेकर जापान के समुद्र में आत्महत्या की कोशिश की लेकिन किस्मत से दोनों बच गये लेकिन अनहोनी ने इस बच्चे पर इतना कहर ढ़ाया कि उसकी माता ने उसे माकीगुची को लावारिस छोड़ दिया। जब उनके चाचा जेन्दायु माकीगुची को इस बात का पता चला तो वे बच्चे को घर ले आये और उसकी परवरिश की और अपना नाम भी दे दिया जिस कारण उनका नाम 'त्सुनेसाबुरो माकीगुची' कहलाया। चौदह साल की उम्र में माकीगुची अपने दूसरे चाचा के पास शिक्षा ग्रहण हेतु चले गये जो ओटारू में रहते थे। इनका परिवार भी काफी निर्धन था। निर्धनता के कारण माकीगुची ओटारू के हाई स्कूल में प्रवेश न पा सके। फिर उन्होंने वहां के स्थानीय पुलिस विभाग में बड़ी ईमानदारी एवं तन्मयता से नौकरी करने लगे। स्थानीय पुलिस के प्रधान उनके विभागीय कार्य से इतने प्रभावित हुए कि वे अपने साथ सपोरो ले गये। यहाँ माकीगुची ने परीक्षा की तैयारी की। मेहनत रंग लाई और 1891 में माकीगुची नॉरमल स्कूल के तृतीय वर्ष के छात्र के रूप में प्रवेश मिल गया तथा 1913 में प्राथमिक स्कूल में प्राध्यापक पद पर सुशोभित हुए और 20 वर्षों तक टोक्यो के स्कूल में इसी पद पर कार्य

किया। अनुशासनप्रियता के कारण शिक्षा दार्शनिक के पद पर सुशोभित हुए और उनके विचारों की प्रासंगिकता केवल 19वीं शताब्दी में ही नहीं बल्कि आज भी विश्व के शिक्षा आयोग उनके द्वारा दी गई शिक्षा पद्धतियों को मानकर चल रहे हैं। उनके द्वारा दी गई आधे दिन की स्कूल प्रणाली आज 21वीं शताब्दी में लागू किया जा रहा है।

माकीगुची उन शिक्षाशास्त्रियों के बड़े आलोचक थे जो केवल शिक्षा का मात्र पेट भरण और औपचारिकता मानते थे। उनका कहना था कि ऐसे शिक्षाशास्त्री समाज पर बोझ हैं तथा मरे हुए पशु के समान हैं। वे न तो कर्त्तव्य को समझते हैं और न ही अपने अधिकार जानते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि ''जब तक स्कूल समाज की नैतिक बुराईयों को रोकने की कोशिश नहीं करते तो मुझे डर है कि वे समस्याओं की जटिलताओं को और बढ़ाएंगें। उनका आग्रह था कि शिक्षकों को खुद अपने और अन्य शिक्षकों के अभ्यासों का शिक्षार्थी बन जाना चाहिए। उनका मानना था कि व्यवहार से ही सिद्धान्त पनपते हैं। इसका कारण यह रहा है कि उनकी पुस्तक ''एजुकेशन फार क्रिएटिव लिविंग'' की उत्पत्ति हुई जिसने माकीगुची को शिक्षा दार्शनिक बना दिया।

शैक्षिक क्षेत्र से बढ़ते विकर्षण के कारण सुधार योजना कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने धर्म का क्षेत्र चुना। यहां भी खासतौर से 1928 में 'निचिरन शोशु बौद्ध पंथ' अपनाने के बाद वे विवादग्रस्त रहे। 1944 में राज्य-पोषित शिन्टो धर्म का तीव्र विरोध करने के कारण उन्हें बंदी बनाकर सुगामो जेल में रखा गया। वहां बंदी होने के सत्रह महीने बाद, 73 वर्ष की आयु में कुपोषण के कारण उनका देहांत हो गया।

हम कह सकते हैं कि पुस्तक 'एजुकेशन फार क्रिएटिव लिविंग' ऐतिहासिक और समकालीन' दोनों रूपों में कौतुहल जगाती है। शिक्षा के क्षेत्र के अन्य पुराने मौलिक चिंतकों की कोशिशों की तरह, माकीगुची के सुधार के लिए संघर्ष भी महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनैतिक टिप्पणियों की तरह जीवित हैं। उस जमाने के बौद्धिक वातावरण और औद्योगीकरण, वर्ग संघर्ष, विज्ञान और विकास के जीवन-सम्बद्ध मुद्दों का प्रभाव था- और इन्हीं से माकीगुची बहुत गहरे रूप से प्रभावित हुए। अन्य सुधारकों की तरह, उन्हें चिन्तन में मानवता की सम्पूर्णता के प्रति एक मासूम विश्वास झलकता था और साथ ही विज्ञान के माध्यम से विकास भी। यही कारण है कि आज जापान विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणीय भी है।

आधे दिन की स्कूल प्रणाली बनाम बुनियादी शिक्षा

माकीगुची ने जब देखा कि शिक्षा के क्षेत्र में सुधार की उपेक्षा की जा रही है जिस कारण युवा वर्ग भटक रहा है। उन्हें केवल समुद्र के किनारे जमघट बना या घूमने फिरने के सिवाय कोई काम नहीं है। इसका नतीजा यह होगा कि समाज में अनैतिकता फैल जाएगी तो माकीगुची ने एक सामाधान दिया कि छात्रों को सारा दिन स्कूल में न रखें और उन्हें आधे दिन के अवकाश पर रख कर उनसे सृजनात्मक कार्य करवायें जिसे उन्होंने बेसिक शिक्षा भी कहा है।

बेसिक शिक्षा का अर्थ है 'छात्र को पुस्तकीय एवं अव्यवहारिक शिक्षा से हटा कर व्यवहारिक एवं सर्वांगीण विकास की शिक्षा देना है। इसका मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक शिक्षा है। इसके द्वारा बालक को स्वावलम्बी बनाना है जिससे वह जीवन में आने वाली जीविकोपार्जन समस्याओं से निपट सकें। इस शिक्षा के द्वारा बालक समाज के हर क्षेत्र से जुड़ जाता है और मूल्यों और आदर्शों का पालन करते हुए उत्तम नागरिक बन सकता है।' माकीगुची ने यह स्वयं देखा और अनुभव भी किया है।

स्नातकों के सांयोगिक जमघट में से कितने समाज में आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं। क्या हाईस्कूल स्नातकों में बढ़ती हुई बेरोजगारों की संख्या समाज के लिए एक खतरा खड़ा नहीं करतीं? इसके कारण क्या हैं?

अधिकतर स्कूल उच्च-शिक्षा की तैयारी में जुटे हैं, न कि व्यावहारिक-वास्तविक जीवन के चिंतन में। इसका कारण यह है कि स्नातक बनने के बाद विशेषाधिकार मिलते हैं और वे सम्पन्न जीवन की एकमात्र कुंजी माने जाते हैं। इसलिए छात्र केवल उच्च शिक्षा के उद्देश्य से प्रेरित होकर मैट्रिक करते हैं। इस तरह आज की शिक्षा मानव जीवन के ध्येयों से पूर्ण रूप से विलग हो गई है। जब तक कि हम विशेषाधिकारों पर बंदिश नहीं लगाते, हम युवाओं को फुसलाने के लिए जाल फैलाने के अलावा कुछ नहीं कर रहे। वे बदलते समय के निष्क्रिय दर्शक मात्र हैं, और इसलिए वे स्कूलों में जमघट लगाते हैं। इस मूर्खतापूर्ण अपेक्षा में कि ये विशेषाधिकार हमेशा ही चलते रहें। बिना जानबूझ वे शिक्षा को एक व्यसन बना रहे हैं।

आज की शिक्षा अव्यावहारिक है। सवाल यह नहीं है कि शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य समानता होना चाहिए कि नहीं। माना कि यह बात सही है कि शिक्षा इस दिशा में जरूरत से आगे ही बढ़ गई है, मगर यह बात भी उतनी ही निश्चित है कि किसी हद तक एकीकरण अनिवार्य है। लेकिन ज्यादा जरूरी यह है कि शिक्षा के व्यावहारिक

मामलों की ओर चिंतन के अभाव को ठीक किया जाये।

माकीगुची ने उपर्युक्त समस्याओं को देखते हुए स्कूल में आधे दिन की स्कूल प्रणाली का प्रावधान रखा जो काफी हद तक सफल भी रहा। जापान में आज इस विधि का मुख्यत: पालन भी हो रहा है। विश्व के कई देशों ने इसे अपनाया भी और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार भी हुआ है। आज भारत सरकार द्वारा स्कूलों में ही बस्ता रखने की नीति को कार्यरूप दिया जा रहा, इससे यह सिद्ध होता है कि बालक को स्कूलों में कार्य करवा दिया जाये ताकि बाकी समय में वह तनावमुक्त होकर अन्य कार्य कर सके।

माकीगुची का कहना है कि इस अनुभव में मैं एक अहम और बुनियादी बदलाव का प्रस्ताव रखूंगा। वह यह है- हमारे विद्यालयों को प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय की क्लास-रूम शिक्षा को आधे दिन की प्रणाली में बदल देना चाहिए। यहाँ मेरा इरादा बहस शुरू करने का है, क्योंकि इस मुद्दे को गंभीर चिंतन की जरूरत है। इस दिशा में उन्मुख होने के गहरे प्रभाव होंगे और शिक्षा में बहुत बड़ा पुनर्संगठन करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। किसी समय में यह विचार ईश-निंदनीय जैसा प्रतीत होता और पूरा शैक्षणिक समुदाय इसे आड़े हाथों लेता। इस प्रकार इस विचार को मैंने दस साल से भी अधिक समय तक अपने तक ही रखा। लेकिन अब जमाना बदल गया है। डॉक्टरेट की डिग्री बिल्कुल आम हो गई है और वह किसी दक्षता का दावा नहीं है। वाकई कौन सोच सकता था कि रोजगार के मंदे बाजार में डिग्रियां इतनी बेमानी हो जाएगी?

इस समस्या के स्रोतों का उद्‌गम हमारी समकालीय शैक्षिक प्रणाली है। जैसे-जैसे शिकायतें बढ़ती जा रही हैं मुझे इस बात पर ही विश्वास होता जा रहा है कि कालांतर में सुधारों के हामी आधे दिन की स्कूल प्रणाली को एक तर्कसंगत समाधान मानेंगे। वैसे ही उच्च विद्यालय मूल्य विहीन हैं क्योंकि वहां का छात्र कोई सृजनात्मक कार्य नहीं करता। जो व्यावसायिक स्कूल खुले हैं उनमें बहुत कुछ कार्य होने लगा है और परम्परावादी शैक्षिक समुदाय में बदलाव आने लगा है। माकीगुची का कहना है कि परम्परावादी शिक्षा जब जड़ हो गई है स्कूल में आधे दिन की पद्धति अपना लेना सुधार के लिए सबसे कारगर तरीका है।

माकीगुची ने बताया कि जब स्कूल की आधे दिन की प्रणाली शुरू होगी तो निम्नलिखित बदलाव आयेंगे।

प्राथमिक स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक आधे दिन की प्रणाली शुरू की जायेगी तो बालक में कार्यकुशलता बढ़ेगी, शैक्षणिक विषयों और विधियों में बदलाव आयेगा जिससे छात्र सारा दिन किताबों में न घुस कर मूल्य सृजन कार्यों में लगेगा। स्कूल में जो किया जा रहा है उसमें कमी आयेगी। बालकों को स्कूलों में भरा गया है उससे उन्हें निजात मिलेगी 'परीक्षा नर्क' में सुधार होगा। छात्र अपना बाकी आधा दिन कक्षा के बाहर बितायेंगे और वे किसी उत्पादक, व्यावसायिक गतिविधि में रत रहेंगे। वे अपना पैतृक व्यवसाय में हाथ बढ़ा सकते हैं या अपनी क्षमतानुसार अन्य कार्य करके जीविकोपार्जन कार्य में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे। इसके अलावा छात्र खेल-कूद या किसी विशेष क्षत्र में जाने की तैयारी कर सकते हैं या हर रूप में राज्य और निजी नागरिकों की ही सहकारिता और वित्तीय सहायता से चल सकते हैं। इसके साथ-साथ बेकारी का समाधान भी मिल जायेगा। जो आज व्यावसायिक प्रणाली चलाई जा रही है स्कूल की आधे दिन की प्रणाली द्वारा स्वयं ही समाप्त हो जायेगी और सरकारी व्यय भी बचेगा। इस आधे दिन प्रणाली का अर्थ यह भी नहीं कि छात्र बस स्कूल में ही रह कर कार्य तक सीमित रहेगा वह जीवनपर्यन्त के गुर सीखकर सामान्य विद्यालयी और व्यवसायिक प्रशिक्षण में सामान्य शिक्षा में हम राही होंगे।

माकीगुची ने यह अवलोकन किया कि आधुनिक युग में बालक अवारागर्दी करते हैं तथा अनुशासनहीन हो गये हैं। इसका कारण यह है कि आज का युवा वर्ग श्रम को ओछा समझता है। वहीं दूसरी ओर जो अल्पसंख्यक हैं वे अपने कार्य करने में लज्जा महसूस करते हैं। इसका कारण यह है कि हम अपनी जिम्मेवारी कम समझने लगे हैं। हमें आज उपरोक्त स्थिति से बचना है तो स्कूल में आधे दिन की स्कूल प्रणाली शुरू करनी होगी जिससे शिक्षा अर्जन के साथ-साथ व्यवसायिक कार्य भी सीखेंगे। अगर इस अवसर को गवां दिया तो जीवनपर्यन्त इसकी आपूर्ति नहीं हो सकेगी। इस काल में काम करने की आदत न डाली तो अधेड़ अवस्था में रोजगार बदलने की कठिन स्थिति में रहना पड़ेगा। माकीगुची का कहना है 'आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक शिक्षार्थियों को मूल्य सृजन की ओर दिशान्वित करें। उन्हें चाहिए कि शिक्षार्थी में रूखी सूखी छवि न उबारें बल्कि उनसे होने वाले लाभ हानि के बारे में बतायें और शिक्षार्थी अनुशासन में रहकर शिक्षा ग्रहण करें तथा दिनचर्या ऐसी बनायें जिसमें वास्तविकता दिखाई दे और भविष्य का मार्गदर्शक बनें। फिर कहते हैं कि मार्गदर्शक का अर्थ चरित्रपूर्ण शिक्षकों में समझ-बूझ का सुनियोजित प्रभुत्व, जिसे जानकर शिक्षार्थी

गतिशीलता ग्रहण करता है। वह अचेतन जीवन से चेतन की ओर, मूल्यहीन जीवन से मूल्य की ओर, विवेकहीन जीवन से विवेक की ओर दिशान्वित होता है, यही सच्ची शिक्षा है।

फिर माकीगुची ने यह स्पष्ट किया है कि यदि अगर हमने पाठ्यपुस्तकों को अध्ययन मात्र से ये भर देंगे तो व्यावसायिक प्रशिक्षण की जगह कहां बचेगी। यदि हमें जिन्दा रहना है और कुछ करना है तो व्यवसायिक प्रशिक्षण अवश्य जोड़ना होगा। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो युवा वर्ग केवल समुद्रों के किनारे घूमते नजर आयेंगे जो अवनति का करण होगा। साठ से अस्सी के दशक में यदि हम नजर डालें तो विकसित देशों में एक 'हिप्पी कल्चर' पैदा हो गई थी जिसका कारण यही था कि युवा वर्ग भटकाव की स्थिति में आ गया था क्योंकि उन्हें समाज एवं शिक्षा ने व्यवसायिक प्रशिक्षण नहीं दिया था। अब यही समय है कि भटके हुए युवाओं को प्रशिक्षित करें। यदि हम माकीगुची के शिक्षा दर्शन पर अवलोकन करें तो आज भारत में जिस प्रकार यू.जी.सी. ने व्यवसायिक कोर्स शुरू किये हैं, उन्हीं की देन दिखाई पड़ती है।

माकीगुची ने अपनी बुनियादी शिक्षा में बताया कि विद्यार्थी प्राकृतिक साधनों से स्वयं जीविकोपार्जन सीखें अपनी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं करें। जब बालक इसे पूर्ण रूप से समझ लेगा तो मूल उद्योगों की नीतियां भी समझ लेगा। इन नीतियों को समझने से पहले आकाशीय, मानवीय और आर्थिक घटनाओं को समझना होगा। ये घटनाएं निम्नलिखित हैं :

1. खगोलीय घटनाएं
2. पृथ्वीगत घटनाएं
3. जलीय घटनाएं
4. वायु मण्डलीय घटनाएं
5. जैवकीय घटनाएं
6. अकार्बनिक घटनाएं

मानवीय घटनाएं

1. जीविका के साधन
2. समूहबद्ध होने के साधन
3. सामाजिक समूह

4. सामाजिक वर्ग
5. समाज में श्रम विभाजन
6. राजनैतिक घटनाएं

आर्थिक घटनाओं में जीविकोपार्जन साधन हैं। इनके साथ-साथ छात्र को सिलाई, कढ़ाई, शिल्प आदि के कार्यों में प्रशिक्षित करना चाहिए। इसके बाद आदर्श-मूल्य बताते हुए उसे आम निर्देशित विषय जैसे भाषा, गणित, शारीरिक शिक्षा के बारे में अवश्य बताना चाहिए। जब छात्र स्वयं मेहनत करने लगेगा तो वह स्वयं ही ज्ञानार्जन की ओर अग्रसर होगा। फिर इसके बाद आत्म संरक्षण, शरीर क्रिया विज्ञान, गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, जैव विज्ञान, मनोविज्ञान, इतिहास की शिक्षा के साथ उत्तम नागरिकता के गुण बताये जाने चाहिए। खाली समय में बालक जीवन की सौंदर्याभिरुचि, कला, चित्रकला, कविता व साहित्य की ओर भी ध्यान दे। जब बालक में उपरोक्त गुणों की भरमार होगी तो वह स्वयं ही खेल, शारीरिक शिक्षा, नृत्य, शिल्प, चित्रकला, राजगिरी, मानचित्र बनाना, गाना, श्रव्य-दृश्य आदि में पारंगत हो जायेगा।

अन्त में माकीगुची का कहना है कि पाठ्यक्रम की संरचना इस तरह बनाना चाहिए कि छात्र यदि एक विषय की ओर बढ़ता है तो उसे अन्य विषयों को पढ़ना होगा और इससे व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होगा। स्वयं इसको देखना ही होगा तभी वह एक उत्तम नागरिक कहला सकता है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि माकीगुची ने जिस प्रकार के विचार अपने समय में प्रस्तुत किये आज सारा विश्व उन्हें किसी न किसी रूप में मानकर चल रहा है। उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा है कि सबसे पहले व्यक्ति का चरित्र उच्च हो तो वह सभी सुख को प्राप्त कर सकता है। उन्होंने अपनी परिस्थितियों को देखते हुए समाज के सामने दर्पण रखा है जिसमें शिक्षा सम्बन्धी सभी समस्याआं का निराकरण मिलता है। उन्होंने कहीं भी औपचारिकता नहीं निभाई है। चाहे वह विद्यार्थी के बारे में हो या समाज के बारे में। माकीगुची की शिक्षा का एक ही आधार दिखाई पड़ता है, वह है सामाजिक चेतना और सामाजिक हित में एकरूपता होना जिससे हर व्यक्ति का चरित्र उभर कर आता है, जिससे सबकी सम्पन्नता भी उजागर होती है। माकीगुची के शिक्षा दर्शन एवं महत्व के बारे में प्रो. डेविड एल. नोकटन जो युनिवर्सिटी आफ डेलावेयर, अध्यक्ष दर्शन विभाग ने लिखा है ''माकीगुची के शिक्षा दर्शन और उनके प्रस्तावित सुधारों को पश्चिम की शिक्षा से जोडूं तो बहुत कुछ

उन्हीं को ही देखता हूं। जैसा माकीगुची ने प्राथमिक स्तर और माध्यमिक शिक्षा स्तर के क्षेत्र में काम किया है, ऐसा किसी ने नहीं किया है।

आधे दिन के स्कूल शिक्षा प्रणाली के मूल्य पर विचार करते हुए राबर्ट बुलोफ जूनियर ने इस प्रकार वर्णित किया है 'वास्तविक शिक्षा के लक्ष्य को प्रतिपादित करने की प्रक्रिया माकीगुची की विचारधारा का केन्द्र बिन्दु थी। उनका मानना था कि जापानी शिक्षा का सबसे कमजोर पहलू 'झरना सिद्धांत' था और दार्शनिकों पर शिक्षा का दायित्व छोड़ना। उनका दृढ़ विश्वास था कि शैक्षिक अभिप्राय और ध्येय के निर्णयों को दार्शनिकों और विद्वानों पर छोड़कर समाज बहुत बड़ी गलती करता है। हमें चाहिए कि शिक्षार्थी, अभिभावक, शिक्षक के विचार शामिल किए जाने चाहिए। दार्शनिक और बड़े-बड़े विद्वान वास्तविकता से बहुत दूर रहकर कल्पना लोक में विचरण करते हैं। वे सिद्धांत दे सकते हैं लेकिन व्यवहारिकता नहीं। उन्होंने कहा कि यह आवश्यकता है कि हम पठन-पाठन से सम्बन्धित हर अध्ययन को वास्तविक स्थितियों से जोड़ें। इसके लिए पूरी सैद्धान्तिक प्रक्रिया को उलटकर व्यवहारिक स्तर पर लाना होगा। विद्वानों द्वारा दिये गये उँचे धरातल विद्यार्थियों पर न थोपें या वातावरण में ऐसे मौसमी सिद्धांत न रखें जो हवा के एक झोंके से उथल-पुथल मचा दे या उसी के साथ उड़ जाये। इसकी बजाय वे शिक्षाकर्मी जिनकी जड़ें प्रतिदिन के अनुभवों में गड़ी हैं, उनके सिद्धांतों का निचोड़ निकालकर और ऐसे सुधारों के रूप में व्यवहार में लायें। यदि हम इससे दूर रहेंगे तो कोई परिणाम नहीं निकलेगा और युवावर्ग भटक जाएगा। इसलिए युवावर्ग को बुनियादी शिक्षा दी जाए जिससे वे हर समय नये चिन्तन की ओर बढ़ सकें।

जब हम उपरोक्त तथ्यों को देखते हैं तो माकीगुची के आलेखों में दैनिक जीवन की वास्तविकता ही दिखाई पड़ती है। आज समय आ गया है कि यदि हम युवावर्ग को जीवन के वास्तविक मार्ग न दिखा सकें तो वह दिन दूर नहीं जब समाज में एक भटकाव पैदा होगा और युवा वर्ग निराशा में डूबकर आशावाद को छोड़ देगा। आज जरूरत है सुख, सद्गुण, समय व मूल्य, विकास का मूल्य तथा स्वयं की पहचान। यदि हम माकीगुची के उपरोक्त विषय पर ध्यान देंगे तो सभी समस्याएं स्वयं हल हो जाएंगी।

जब हम उपरोक्त तथ्यों को देखते हैं तो माकीगुची के आलेखों में दैनिक जीवन की वास्तविकता ही दिखाई पड़ती है। आज समय आ गया है कि यदि हम युवावर्ग को जीवन के वास्तविक मार्ग दिखा सकें तो वह दिन दूर नहीं जब समाज में एक भटकाव पैदा होगा और युवा वर्ग निराशा में डूबकर आशावाद को छोड़ देगा। आज जरूरत है

सुख, सद्गुण, समय का मूल्य, विकास का मूल्य तथा स्वयं की पहचान। यदि हम माकीगुची के उपरोक्त विषय पर ध्यान देंगें तो सभी समस्याएं स्वयं हल होती जाएंगी।

जब हम माकीगुची के शिक्षा दर्शन में 'आधे दिन के स्कूल का मूल्य' का अवलोकन करते हैं तो महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा परिलक्षित होती है क्योंकि जो माकीगुची कहना चाहते हैं वैसा ही गांधी जी ने अपनी शिक्षा प्रणाली में इसे 'बुनियादी शिक्षा' कहा है। दोनों समकालीन शिक्षा दार्शनिक तो हैं लेकिन दोनों में थोड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। गांधी जी पूर्ण रूप से शिक्षा के अध्यात्म से जोड़कर आदर्शवाद प्रस्तुत करते हैं वहीं माकीगुची आदर्शवाद को अपनाते तो हैं लेकिन यथार्थवाद पर अधिक जोर देते हैं। इसलिए हमारा कहना है कि माकीगुची एक यथार्थवादी शिक्षा दार्शनिक अधिक दिखाई पड़ते हैं।

संदर्भ

त्सुनेसाबुरो माकीगुची, सृजनशील जीवन और शिक्षा, विचार और सुझाव, अनुवादक अशोक लाल, दिल्ली

प्रो. डेविल एल. नोटकर, अध्यक्ष दर्शनशास्त्र, यूनिवर्सिटी ऑफ डेलावेयर

राबर्ट वी वुलेफ जुनियर, ऐसो. प्रो. अध्यक्ष दर्शनाशास्त्र, ऊंटा विश्वविद्यालय, अमेरिका

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 18, अंक 2, अगस्त 2011

पुस्तक समीक्षालेख

शिक्षा और वर्चस्व के द्वंद्व का वितान

निरंजन सहाय*

पाठ्यपुस्तक की राजनीति, कमलानंद झा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली

अनेक परस्पर विरोधी मान्यताओं के आलोक में अस्मिता निर्माण की राह तय होती है। भारत में ज्ञानात्मक विमर्श की एक लंबी विरासत के बीच औपनिवेशिक दौर की विभिन्न संश्लिष्ट मान्यताओं-अवधारणाओं के साथ पाठ्यपुस्तकों की रचना शुरु हुई। भारत जैसे बहुलतावादी सांस्कृतिक विरासत वाले देश में मौजूदा दौर की बहुविध छवियों के पीछे उपनिवेशवादी दौर की परिस्थितियां जिम्मेदारी रही हैं। जरूरत इस बात की है कि उस दौर की संश्लिष्ट वास्तविकताओं से रू-ब-रू हुआ जाए। समाज की विकास प्रक्रिया में निहित सोच, संघर्ष और सपनों के निर्माण में एक बड़ी भूमिका पाठ्यचर्याओं और उनके आधार पर बनने वाली पुस्तकों की होती है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का प्राय: अभाव-सा रहा है, जिनमें विरासत के आलोक में पाठ्चर्याओं और पाठ्यपुस्तकों के समग्र मूल्यांकन, निहितार्थों और फलश्रुतियों का विवेचन-विश्लेषण किया गया हो। ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन से प्रकाशित और युवा शिक्षा विशेषज्ञ कमलानंद झा की पुस्तक 'पाठ्यपुस्तक की राजनीति' इस दृष्टि से उल्लेखनीय प्रयास है। पुस्तक रचना का यह तेवर बिल्कुल नया है। यहां आवरण पृष्ठ के कुछ अंशों को उद्धृत करना मुनासिब होगा, 'इस पुस्तक में हिन्दी पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु में निहित मूल्यतंत्र को समझने के लिए व्यापक ऐतिहासिक सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भ की खोजबीन की गई है। इस संदर्भ के निर्माण में लेखक ने ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान नीतियों और 1857 के स्वाधीनता संग्राम के बाद हिन्दी नवजागरण के अंतर्द्वंद्वों

* सह-प्रोफेसर, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी-221002 उत्तर प्रदेश

को विशेष रूप से रेखांकित किया है। पाठ्यपुस्तकों में निहित मूल्यतंत्र के विश्लेषण हेतु इस प्रकार के व्यापक संदर्भ की खोजबीन करना अपने-आपमें नया योगदान है।

सवाल यह है इस सिलसिलें में किन बिन्दुओं के आधार पर पुस्तक की रचनात्मक अन्विति फलित हुई है। आवरण पृष्ठ की टिप्पणी ध्यान देने लायक है, 'इस विश्लेषण से ब्रिटिश सत्ता के प्रति राजभक्ति का भाव, सांप्रदायिकता, लैंगिक विषमता, जाति प्रथा में आस्था, ब्राह्मणवाद के वर्चस्व को स्वीकृति, गैर-वैज्ञानिकता, भाषाई-धार्मिक-आंचलिक संकीर्णता आदि मुद्दों को जांचने-परखने का ठोस संदर्भ मिल जाता है।' शिक्षा संसार में इन मुद्दों पर भारी घमासान जारी है। जहां एक पक्ष इन संदर्भों को विजातीय तत्व कहकर पल्ला झाड़ लेता है, वहीं दूसरा पक्ष इसे पतनशील संस्कृति की स्वभाविक फलश्रुति कहकर प्रतिरोध के देशज नजरिए को सिरे से खारिज कर देता है। ऐसी सूरत में पुस्तक की यात्रा का वस्तुपरक विश्लेषण हमें अनेक अर्थों में संपन्न बनाता है।

आभार, भूमिका, अनुक्रमणिका को छोड़कर पूरी पुस्तक पांच खंडों में अपनी यात्रा पूरी करती है। पहले अध्याय का शीर्षक है, 'शिक्षा का सांस्कृतिक दायित्व'। अध्याय तीन उप-खंडों में विभक्त है। क्या महज पाठ्यपुस्तकों से दृष्टि संपन्नता संभव है। या फिर शिक्षक की मौजूदगी के ज्यादा गहरे निहितार्थ हैं? अध्याय के आरंभ में इस मुद्दे पर संजीदगी से विचार हुआ है। लेखक की शोध दृष्टि पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में परस्पर विरोधी मान्यताओं का मूल्यांकन करती है। गांधी और रवीन्द्र दोनों पाठ्यपुस्तकों की अहमियत पर अधिक बल देने की प्रक्रिया से असहमत हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो यहाँ तक कहते हैं कि 'बालकों के मन में इस प्रकार का अंध-संस्कार जाने ही न देना चाहिए। कि पुस्तकें पढ़ने को ही सीखना कहते हैं। यह बात उन्हें पग-पग पर जतलाते रहना चाहिए कि पुस्तकों में जो कुछ ज्ञान संचित है वह प्रकृति के अक्षय भंडार से ही हरण किया गया है।' रवीन्द्रनाथ और गांधी जैसे हमारे मनीषीयों की यह वैज्ञानिक दृष्टि ही थी कि वे उस अंधश्रद्धा के प्रति खासतौर पर सचेत थे कि किसी भी कृति को अपौरूषेय या तथाकथित स्वर्ग से सीधे अवतरित न करार दिया जाए। लेखक ने विस्तार से पाठ्यपुस्तकों के बारे में एक हद तक अभिव्यक्त किए गए नकारात्मक दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया है। लेखक ने पाठ्यपुस्तकों की मौजूदगी को एक-दूसरे नजरिए से भी परखा है। वह यह कि जिस देश में बेहतर तरीके से प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी हो और एक मुंह चिढ़ाती सच्चाई यह भी हो कि इस पेशे में वही लोग आते हैं जो मजबूरीवश इस पेशे में आये हों, वहाँ अच्छी पाठ्यपुस्तकों की महत्ता काफी हद तक

बढ़ जाती है। उसी तरह ज्यादातर भारतीय स्कूलों में संसाधनों के अभाव में शिक्षा की मुकम्मल अवधारणा संभव नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में गुणवत्तायुक्त पाठ्यपुस्तकों का विशेष महतव है पर इन संदर्भों पर विचार करते हुए लेखक यह कहना नहीं भूलते कि, 'इन सबके बावजूद ध्यान देने की आवश्यकता यह है कि पाठ्यपुस्तक शिक्षार्थी और शिक्षक पर हावी न हो जाए।'

पाठ्यपुस्तकों के सरोकार, सामग्री और प्रस्तुतिकरण के सिलसिले में भारतीय शिक्षाविदों में विचार की एक लंबी परंपरा रही है। गांधी जैसे विचारक अपनी बुनियादी तालीम की अवधारणा में इस बात पर बल देते थे कि पाठ्यक्रम सीधे तौर पर प्रकृति और स्थानीय परिस्थिति से जुड़ा हो। उसी तरह यशपाल समिति ने इस बात पर चिंता जाहिर की थी कि सामाजिक विज्ञान का उपदेशों में पहुंचाना या केवल समृद्ध वर्ग के बारे में दी जाने वाली शिक्षा अनुचित है। लेखक ने विभिन्न दृष्टांतों के माध्यम से इस तथ्य का प्रभावी विश्लेषण किया है। किशोरीलाल द्वारा 1950 में लिखी पुस्तक 'जड़ मूल से क्रान्ति' की स्थापनाएं लेखक को प्रभावित करती हैं कि 'एक देश की दूसरे देश के साथ लड़ाई होने की घटनाएं इतिहास में दर्ज करके रखी जाती हैं, लेकिन एक-दूसरे के जीवन-व्यवहार की अनेक घटनाएं उत्पात मचाने वाली न होने के कारण दर्ज नहीं की जातीं। इसलिए बालकों के मन पर यह असर पड़ता है कि विदेशियों को तो शत्रु मानकर उनसे हमेशा होशियार ही रहना चाहिए। इससे बालकों के मन में यह गलत देशाभिमान उत्पन्न होता है, जिसके कारण ऐसी भावना को पोषण मिलता है कि अपने देश की बात उचित हो या अनुचित, लेकिन हमें तो अपने देश का ही पक्ष लेना चाहिए। प्रसंगवश 'भारत और पाकिस्तान' के संदर्भ में इसे बखूबी समझा जा सकता है। कृष्ण कुमार की सद्य: प्रकाशित पुस्तक 'मेरा देश तुम्हारा देश' इस अध्ययन के लिहाज से बेहतरीन किताब है। एन.सी.ई.आर.टी. या मध्य प्रदेश की विभिन्न पुस्तकों के संदर्भ में लेखक ने 2005 के एन.सी.एफ. से पहले आई पुस्तकों का हवाला देते हुए बताया है कि कैसे सामाजिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा के नाम पर अनेक बार अवैज्ञानिकता ही नहीं बल्कि गैर-ब्राह्मणवादी समुदायों और स्त्री समाज के बारे में घृणा परोसी गई।

अध्याय के दूसरे उप-शीर्षक 'औपनिवेशिक समाज में शिक्षा' में लेखक समकालीन शिक्षा के ढांचे को औपनिवेशिक करार देते हैं। बेहतर मनुष्य बनाने का उद्देश्य यानि 'सा विद्या या विमुक्तये' 'शिक्षा का उद्देश्य मावन मुक्ति' महज नौकरी तक सिमट कर रह गयी जहाँ यूरोप के बुर्जुआ ने सामंती व्यवस्थाओं के बरअक्स नई व्यवस्थायें दी, वहीं हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं हुआ। यह बेहद तकलीफदेय है कि भारत

में सौद्देश्य एक विशाल वर्ग को शिक्षा से वंचित रखा गया, बकौल लेखक, 'यह तथ्य मानते हुए कि पौराणिक गाथाएं ऐतिहासिक प्रमाण नहीं हैं फिर भी सत्यकाम, कर्ण, एकलव्य और बौद्ध-काल तक अनेक लोगों की ऐसी हृदयविदारक गाथाऐं हैं, जिन्हें भुला पाना कठिन है।' यह भी सही है कि अंग्रेजों के आगमन के पूर्व तक हमारा शिक्षा संसार धूमिल हो चुका था। दिनकर के साक्ष्य का लेखक ने हवाला दिया है कि, 'अंग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व भारत की शिक्षा पद्धति जीर्ण-शीर्ण गतानुगतिक और निष्प्राण थी।' लेखक ने अंग्रेजों के विभिन्न प्रयासों का तथ्यात्मक उल्लेख करते हुए बताया है कि 1781 में वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते में पहला मदरसा खोला, इसी तरह 1801 में हॉट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। लार्ड विलियम बैंटिक ने 1853 में ऐलान किया कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहेगा। तथ्यों का उल्लेख करते हुए लेखक ने सत्य के साक्षात्कार में कोताही नहीं बरती। बकौल लेखक ग्रांट मैकाले और वार्डन का उद्देश्य भारत को बदलकर एक नकली इंग्लिस्तान बनाना था। लेखक ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक बेहद मूल्यवान उद्धरण दिया है, जिसे उद्धृत करना मौजूं होगा, 'हमारे देश का जो पुरुष यूरोपीय दर्शन, विज्ञान और न्याय शास्त्र का पंडित है, वही पुराने कुसंस्कारों और झूठे अंधविश्वासों का यत्नपूर्वक पोषण कर रहा है, जो स्वाधीनता के उज्जवल आदर्श का अपने व्याख्यानों द्वारा प्रचार करता है। वही पराधीनता के सैंकड़ों-हजारों लूटातंतुओं से आपको और दूसरों को आछन्न करके दुर्बल कर रहा है।

औपनिवेशिक दौर की अंग्रेजी सत्ता की कोशिशों से अलग एक दूसरी धारा भी थी जो शिक्षा को भारतीय परिस्थितियों के लिए न सिर्फ तर्कसंगत बनाने के लिए प्रयत्नशील थी, बल्कि राष्ट्रवाद की भावना से भी लबरेज थी। गुजरात विद्यापीठ और जामिया मिलिया जैसी संस्थाऐं इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। लेखक आधुनिक शैक्षिक परिदृश्य की यात्रा तक पहुंचते हैं और यह कहना नहीं भूलते 'कम से कम आधुनिक शिक्षा प्रणाली में इतना परिवर्तन जरूर किया जाना चाहिए कि कठिन परिश्रम और काम के साथ सीखने की संस्कृति का विकास किया जा सके।' तीसरे खंड 'भारत में आधुनिक शिक्षा का सांस्कृतिक' संदर्भ में लेखक ने खासकर आजादी के बाद के दौर में वंचित समूहों, स्त्रियों और अल्पसंख्यकों के लिए किए गए शैक्षिक प्रयासों का विवरण और विश्लेषण प्रस्तुत किया है। लेखक ने मुनीस रजा के हवाले से इस बात पर बल दिया है कि पारंपरिक शिक्षा के जीवंत स्रोतों को पुनर्जीवित करने की जरूरत है, जैसे शास्त्रार्थ या बहस की परंपरा।

दूसरा अध्याय 'हिन्दी क्षेत्र का सांस्कृतिक आत्मसंघर्ष' तीन खंडों में विभक्त है-

'1857 और हिन्दी क्षेत्र', '1857 के लोककाव्य की गरिमा' और 'हिन्दी साहित्य परंपरा की खोज'। नवजागरण के प्रति अंधश्रद्धा या वितृष्णा की बजाय लेखक का वस्तुपरक दृष्टिकोण इस नतीजे पर पहुंचता है कि 'हिन्दी नवजागरण एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ से एक रास्ता प्राचीनता की ओर जाता है तो दूसरा रास्ता आधुनिकता की ओर। इसके अगुआ मध्यकालीन संस्कार लेकर आते हैं लेकिन आधुनिक चेतना से लैस हो जाते हैं। 'लेखक ने लोकगीतों के प्रतिरोधी तेवरों का सशक्त मूल्यांकन किया है। 'हिंदी साहित्य परंपरा की खोज' में लेखक ने इस बात की पड़ताल की है कि हिन्दी साहित्य निर्माता मुख्यत: किस परंपरा से जुड़ते हैं और भावी पीढ़ी के लिए किस तरह से भविष्य की संकल्पना करते हैं। उर्दू शैली काव्य परंपरा का बहिष्कार, स्त्री दलित समाज के प्रति असंवेदनशीलता, पुरुष वर्चस्व की पक्षधरता आदि की वे परंपराएं जिन्होंने जाने-अनजाने हिंदी की मुख्यधारा में स्थान सुनिश्चित किया, उसकी गंभीर पड़ताल दी गई है। शुक्ल स्कूल की अनेक स्थापनाओं से सहमत होने के बावजूद शुक्ल जी ने उन अनेक विसंगतियों की ओर भी लेखक का ध्यान जाता है जो जाने-अनजाने हिंदी की विरासत भी बनी। जैसे भाषा का सवाल इस आलोक में दो धाराएं साफ हैं- एक शुक्ल स्कूल की संस्कृतनिष्ठ भाषा तो दूसरी महात्मा गांधी, प्रेमचंद वाली हिन्दुस्तानी भाषा। शुक्ल जी के लिए लोकधर्म वर्चस्व धर्म है और सिद्ध-नाथ सांप्रदायिक कोटि के रचनाकार हैं, कबीर कर्कश तो सूर की गोपियां मर्यादाहीन। लेखक का यह कहना महत्वपूर्ण है 'आज भी विद्यालय के लिए हिंदी पाठ्यपुस्तक तैयार करने वाले अधिकांश लोग 'शुक्ल स्कूल' से ही दीक्षित हैं। 'सांस्कृतिक अस्मिता की छवियां खण्ड में लेखक प्रभुत्ववादी संस्कृति से असहमति दर्ज करते हुए तर्कसंगत कथन प्रकट करते हैं, 'जब दक्षिण के पूरे संगम साहित्य (जो वैदिक साहित्य टक्कर का है) और संस्कृति को गटक कर सिर्फ वेद, पुराण, उपनिषद और उत्तर भारत की संस्कृति का गान किया जाए तो हम कह सकता है कि यह अस्मिता की धारा को कुंद कर दूसरी अस्मिता पर शान चढ़ाने जैसा है। आदिवासी, दलित और स्त्री अस्मिता की लगातार उपेक्षा को भी हम इस श्रेणी में रख सकते हैं।

शिक्षा और सत्ता के संबंधों के विश्लेषण की दृष्टि से तीसरा अध्याय 'शिक्षा और सत्ता : नीति-अनीति की रस्साकशी' उल्लेखनीय है। लेखक ने छात्र-राजनीति को सत्ता द्वारा कुन्द करने को प्रतिरोध के स्वरों को कुचलने की सोची-समझी रणनीति माना है। लेखक ने 'शिक्षा के मौलिक अधिनियम 2009' उपशीर्षक के अन्तर्गत यह बताया है कि बिना बुनियादी संकल्पनाओं को बदले और संसाधनों को जुटाए यह अधिनियम

सरकारी प्रपंच मात्र है। शिक्षा नीति, आयोग और सिफारिशों की खींचातानी' में लेखक ने 1968 से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 तक की नीतियों का विश्लेषण किया है। लेखक ने इस क्रम में कृष्ण कुमार की पुस्तक 'शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व' और 'राज समाज और शिक्षा' का बेहद सारगर्भित मूल्यांकन किया है। फिल्म 'थ्री इडियट' के विश्लेषण क्रम में लेखक फिल्म की तमाम सकारात्मक बातों को बताने के बावजूद यह बताना नहीं भूलते कि फिल्म पुरुष वर्चस्व और प्रचलित शैक्षिक पदानुक्रम अवस्था से खुद को बचा नहीं पाई है जहाँ एक इंजीनियर डॉ. बांगरू का अतिशय महिमामंडन फोटोग्राफर फरहान के कद को छोटा कर देता है। लेखक इसे खासतौर पर नोट करते हैं कि हिन्दी फिल्मों की दुनिया में बेहद विषम परिस्थितियों में इंजीनियर द्वारा प्रसव कार्य कुशलतापूर्व संपन्न करा देना ज्ञान के रूपांतरण का श्रेष्ठ और कदाचित पहला उच्चारण है।

अध्याय चार यानी 'पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम : समस्याएं और निहितार्थ' में लेखक ने प्रमुखत: ज्ञानार्जन के माध्यम के रूप में मातृभाषा की जरूरत को रेखांकित करने वाली स्वाधीनता पूर्व और बाद की शिक्षा समितियों, शिक्षाशास्त्रियों के मत, पाठ्यपुस्तक लेखन की भद्रलोकीय अवधारणा, प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में शिवप्रसाद सितारेहिंद का योगदान, सत्ता द्वारा अपने राजनैतिक इस्तेमाल के लिए कर्नाटक में सोनिया गांधी और बिहार में लालू यादव पर पाठों का निर्माण कराना, अंधविश्वास बनाम वैज्ञानिक चेतना की पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों में मौजूदगी आदि का विश्लेषण किया है। अंतिम अध्याय 'एनसीईआरटी : परिवर्तन और निरंतरता', एन.सी.एफ. 2005 के आलोक में हिन्दी पाठ्यपुस्तकों के सकारात्मक पक्ष और समकालीन दौर से बावस्ता होने के विशेषताओं का सटीक मूल्यांकन किया गया है।

अंत में, यह भी कि कुछ चूकें पुस्तक में रह गई हैं जिनका उल्लेख इस उम्मीद के साथ कि विवेकवान लेखक अगले संस्करण में उनका परिहार करेंगे। मसलन भाषा की अनेक स्थानों पर त्रुतिपूर्ण उपस्थिति है, जैसे पृष्ठ 17 में 'इन सबके बावजूद' की जगह 'इस सबकि बावजूद', पृष्ठ 39 में रवीन्द्र के उद्धरण में 'विधा' की जगह 'विद्या', पृष्ठ 205 में उपशीर्षक की जगह स्वतंत्र अध्याय का संकेत, अनेक शब्द त्रुटियां जैसे 'वगैरह' की जगह 'बगैरह' (पृष्ठ 116), 'आशंका' की जगह संभावना' (पृष्ठ 100) आदि। कुल मिलाकर शिक्षा परिदृश्य की स्थिति, रवायत की मौजूद फलश्रुतियां, पाठ्यपुस्तकों के सकारात्मक हस्तक्षेप के गंभीर अध्येताओं के लिए पुस्तक जरूरी संदर्भ है।